पत्रकार निराला

डा० रमेशचन्द्र त्रिपाठी

मतवाला

"अमिय-गरल, शशिशीकर-रविकर, राग-विराग भरा प्याला
पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह 'मतवाला' ॥"

(प्रति प्याला दो पैसा नकद) (वार्षिक बोतल दो रुपया पेशगी)

वर्ष १] कलकत्ता, अग्रहायण शुक्ल १५, १९८०, शनिवार । [संख्या १८

पत्रकार निराला

रमेशचन्द्र त्रिपाठी,
एम्० ए०

For Bal Vinod Granth Mala
Proprietor

बाल विनोद ग्रन्थमाला,
लखनऊ

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : १९८४

द्वितीय संस्करण : १९८८

मूल्य : ४०/-

प्रकाशक : बाल विनोद ग्रन्थमाला,
३/१ कैसर बाग आफीसर्स कालोनी,
कैसर बाग, लखनऊ

मुद्रक : राज कमल प्रिंटर्स,
६८ यासीनगंज, लखनऊ

स्वस्ति

श्री रमेश चन्द्र त्रिपाठी के शोधप्रबंध 'पत्रकार निराला' के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, सामाजिक पृष्ठभूमि तथा सांस्कृतिक उन्मेष के वैज्ञानिक विवेचन को पढ़कर प्रसन्नता हुई। प्रबुद्ध लेखक ने पत्रकारिता साहित्य के इतिहास पर विहंगम दृष्टि डालते हुए पत्रकार के रूप में निराला के मौलिक योगदान का निरपेक्ष निरूपण किया है। राष्ट्रीय जागरण की नवोन्मेषी चेतना के संवाहक तथा 'समन्वय,' मतवाला,' 'रँगीला,' 'सुधा,' 'सरोज,' 'मौजी' एवं कला के परम संवेदनशील उर्वंसित सम्पादक के रूप में निराला के व्यक्तित्व के वैविध्य की सूक्ष्म तरंगावलियों का यह आकलन स्वयं में ही एक उपलब्धि है।

प्रारंभ में 'समन्वय' के सम्पादन ने महाकवि के व्यक्तित्व के निर्माण में जो आध्यात्मिक एवं भौतिक समन्वय के सोपानों को संवारा है, उसका सूक्ष्म विवेचन ही उसकी भावी प्रवृत्तियों को उद्‌भासित करने का मूलाधार है। उस समय की उनकी सर्जनात्मक अभिव्यक्तियों में विवेकानंद के हृदय की धड़कन महसूस की जा सकती है। विवेकानंद के ही समान निराला का वेदान्त-दर्शन भी निवृत्ति के स्थान पर प्रवृत्ति के राजपथ पर अग्रसर होने का आह्वान करता है। 'जागो फिर एक बार' जैसी ओजस्वी रचनाएँ चिन्तन मनन की उसी समाधि का प्रतिफल है।

पत्रकार के रूप में ही निराला के निबंध कवि के साथ-साथ उन्मुक्त गद्य-कार और चिन्तक का रूप में भी उभरता दृष्टिगोचर होता है। 'मतवाला' के 'चाबुक स्तम्भ' में गरगजसिंह वर्मा 'साहित्यशार्दुल' के रूप में उनकी व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ आज भी पत्रकारों का पथ-निर्देश करती प्रतीत होती हैं। सुधा के सम्पादन काल में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक समस्याओं पर उनकी सम्पाद-कीय टिप्पणियाँ गहन अध्ययन और सूक्ष्म सूझबूझ की परिचायक हैं। साहित्य और कला के अतिरिक्त अंध-विश्वासों और रूढ़ियों पर प्रहार, नारी जागरण,

राष्ट्रभाषा की प्रतिष्ठा और शोषण, पीड़न, के विरुद्ध उनकी प्रगतिशील विचार-धारा इस तथ्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वे जन्मजात विद्रोही थे।

श्री रमेश चन्द्र त्रिपाठी ने अंतर्भेदी दृष्टि से निराला पत्रकार सापेक्ष व्यक्तित्व को उजागर करने का श्लाघनीय प्रयत्न किया है। अभी तक पत्रकार के रूप में निराला की बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा का उद्घाटन कर उनकी सामाजिक चेतना और राष्ट्रजागरण के सचेतन प्रहरी के रूप में इस मन्त्रदृष्टा अग्निगर्भावाणी के धनी कवि का विवेचन नहीं हो पाया था। कबीर और तुलसी की समन्वित साधना के संवाहक इस सारस्वत साधक के निबंध योगदान को समझने के लिए पत्रकार रूप में प्रस्तुत यह अध्ययन इतिहास के समुचित रेखांकन के लिए अनिवार्य सा है, श्री रमेश चन्द्र त्रिपाठी इस साधु, संयत समीकरण के लिए साधुवाद के पात्र हैं।

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

लखनऊ

दिनांक १ जनवरी १९८४

शुभाशंसा

साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में निराला जी का परिदान उल्लेखनीय है। प्राप्त प्रमाणों के अनुसार उन्होंने 'समन्वय', मतवाला', 'सुधा', 'रँगीला', 'सरोज', 'मौजी', 'कला' आदि पत्रों का सम्पादन-संचालन किया था। इनमें कहीं छद्म नाम हैं और कुछ अंक अप्राप्य हैं, फिर भी जितनी सम्पादित सामग्री उपलब्ध है, वह उनके जीवन और साहित्य के अध्ययन में बहुत सहायक है।

पत्रकारिता के क्षेत्र में निराला का प्रवेश सकारण है। इसके पीछे कुछ मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ सक्रिय रही हैं। स्मरणीय है कि निराला की कुछ आरंभिक रचनाएँ सम्पादकों द्वारा अस्वीकृत कर दी गयी थीं, जिससे उनका नूतन भाव बोध और शिल्प-प्रयोग स्थापित नहीं हो पा रहा था। कुछ श्रेष्ठ और ज्येष्ठ सम्पादकों द्वारा उन्हें लांछित करने का षड्यंत्र भी रचा जा रहा था, जिससे निराला का प्रतिक्रिया प्रेरित होना स्वाभविक ही था। इस प्रकार आत्म परिरक्षा हेतु पत्रकारिता का आश्रय लेना उनके लिए उपयोगी ही नहीं, अनिवार्य भी हो गया था।

छायावाद युग में पत्रकारिता ही अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम थी। निराला की तो यह ऐतिहासिक आवश्यकता ही थी। इसके पीछे उनकी आर्थिक विवशता भी कारणभूत रही है। आरंभ में अपनी बेरोजगारी से बाध्य होकर उन्होंने 'समन्वय' में नौकरी की थी और बाद में अपनी गरीबी से विवश होकर 'सुधा' में वैतनिक कार्य किया था। इस प्रकार विशिष्ट मनोग्रंथि, आत्मरक्षा या आत्मविज्ञप्ति की भावना और आर्थिक लाचारी-इन तीन कारणों से निराला जी पत्रकार बने। सम्पादन उनका व्यसन था, उनका व्यवसाय भी, उनका मिशन और उनकी मजबूरी भी।

पत्रकारिता निराला जी के अध्ययन का अपरिहार्य पक्ष है। इसके बिना उनके व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया और साहित्य की क्रमिक सर्जना का अनुशीलन नहीं किया जा सकता। निराला का दर्शनिक रूप 'समन्वय' की देन है। उनका निरालापन 'मतवाला' का प्रदेय है और उनका छायावादी बोध 'सुधा' की उपज है। निराला ने पहली बार जिन रहस्य प्रतीकों, मिथकों और पुरा तत्त्वों को गूढ़ार्थ का विवेचन किया है (जो वर्तमान धर्म निबन्ध में दृष्टव्य है)। वह सूत्र शैली 'समन्वय' का ही संधान है। 'मतवाला' ने निराला का नामकरण

किया है, उन्हें स्थापित किया और प्रगतिशील भी। निराला के साहित्यिक संघर्ष का सूत्रपात यहीं से हुआ है। इसमें वे श्रीमन् गरगजसिंह वर्मा, 'साहित्य शार्दूल' 'पुराने महारथी', 'शौहर', 'जनाबअली' आदि छद्म नामों से विभिन्न स्तंभ लिखते रहे हैं। निराला का व्यंग्य प्रहार और उनका प्रखर युगबोध 'मतवाला' से ही प्रेरित है। वस्तुतः निराला की जीवन-यात्रा में 'मतवाला' मील के पत्थर की भांति है। इसी के माध्यम से उन्होंने मुक्त छंद की प्रतिष्ठा की, वहीं बंगला, अँग्रेजी, संस्कृत आदि का रूपान्तर करके उन्होंने अपने तुलनात्मक साहित्य ज्ञान का प्रमाण दिया है और इसी पत्र द्वारा मृत परम्पराओं के पोषक महारथियों से लोहा लेकर युगान्तर किया है। 'सुधा', रँगीला आदि की भूमिका भी निराला-साहित्य के लिए कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उनकी परिवर्तित जीवन दृष्टि उनके युग विद्रोह और उनकी क्रमश टूटती हुई आस्थाओं के साक्षी हैं ये पत्र।

अस्तु, पत्रकारिता के क्षेत्र में निराला का प्रदेय महत्त्वपूर्ण है। मुझे प्रसन्नता है कि श्री रमेशचन्द त्रिपाठी ने बड़े स्वाध्याय श्रम और मनोयोगपूर्वक इस विषय का अध्ययन किया है। अपनी पुस्तक 'अलक्षित निराला' में मैंने लगभग बारह वर्ष पूर्व सम्पादक निराला पर किंचित प्रकाश डालते हुए यह आग्रह किया था कि निराला का यह पक्ष नितान्त अलक्षित अर्थात अनदिखा पड़ा हुआ है। मेरे आग्रह पर चिरंजीव रमेश ने एम० ए० परीक्षा के एक वैकाल्पिक प्रश्न पत्र (लघु प्रबन्ध) के लिए इस विषय को अंगीकार किया और फिर निराला सम्पादित अनेक दुष्प्राप्य पत्र-फाइलों को खोज करके उनका विस्तृत विवेचन किया, जिसे अब पुस्तकाकर देखकर मैं अतीव संतुष्ट हूँ। क्योंकि वह मेरी ही मनोकामना की एक प्रतिपूर्ति है और इसीलिए भी कि यह कार्य मेरे प्रिय अंतेवासी और प्रियातप्रिय कुलपुत्र रमेश के हाथों सम्पन्न हुआ है। साहित्य देवता के चरणों में अर्पित होने वाला यह उसका प्रथम अर्ध्य है, इसीलिए इस लघु ग्रंथ का एक ऐतिहासिक महत्त्व है। मुझे पूरा विश्वास है, कि निराला साहित्यके अनुरागी प्रबुद्ध पाठक इस कृति का समादर करेंगे और इस अध्ययन-परंपरा को अग्रसारित करेंगे।

'साहित्यिकी'
डी० ५४, निराला नगर, लखनऊ
गणतंत्र दिवस १९८४

डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित
रीडर, हिन्दी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

प्रस्तावना

सम्प्रति पत्र-पत्रिकायें प्रत्येक शिक्षित नागरिक के दैनिक जीवन की आवश्यक अंग हो गयी हैं । एक शिक्षित-सम्भ्रांत व्यक्ति आज दैनिक समाचार पढ़े बिना नहीं रह सकता । वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही प्रकार के जीवन पर समाचारपत्रों ने एक प्रकार से अधिकार ही कर लिया है । पुस्तकों को आज लोग उतना नहीं पढ़ते जितना पत्रिकाओं तथा समाचार-पत्रों को । पत्रकारिता का उदय और विकास मानव-समाज की एक ऐसी क्राँति है जिसकी तुलना अन्य किसी भी समाजोपयोगी वस्तु से नहीं की जा सकती । आज की पत्रकारिता जीवन के सर्वांगीण विकास की मूल निमित्त कही जा सकती है ।

साधक के लिए साधन का, त्यागी के लिए उत्सर्ग का, तपस्वी के लिए काया-कष्ट तथा अनासक्ति का, योद्धा के लिए संघर्ष और रण का, कवि के लिए अनुभूति की अभिव्यक्ति का, कलाकार के लिए संसृति के गूढ़ और रहस्यमय चित्रण का, आलोचक के लिए जीवन की स्थूल और सूक्ष्म धारा के विवेचन का, साहित्यिक के लिए लौकिक और अलौकिक, यथार्थ और भावुक जगत् को प्रकाश में लाने का प्रशस्त मार्ग एक साथ प्रस्तुत कर देने में पत्रकारिता के अलावा और कौन इतना समर्थ है ? ज्ञान और विज्ञान, दर्शन और साहित्य, संघर्ष और क्रांति, उत्थान और पतन, निर्माण और विनाश प्रगति और अधोगति के छोटे-बड़े प्रवाहों को प्रति बिम्बित करने में पत्रकारिता से दूसरा और कौन होड़कर सकता है ? पत्रकारिता जीवन, समाज, संस्कृति और विश्व की अमल आरसी है । अन्याय का प्रतिरोध करने, नये विचारों और कल्पनाओं का वाहक बनने, अभिनव सन्देश का अग्रदूत होने और जीवन-सागर में उठनेवाली ऊर्मियों तथा तूफानों का प्रतिनिधित्व करने में आज पत्रकारिता ही सर्वोपयुक्त माध्यम है ।

वस्तुतः पत्रकारिता का आज के जीवन में असाधारण और अक्षुण्ण स्थान है । मानव-समाज पर साहित्यिक पत्रकारिता का अभूतपूर्व प्रभाव देखा जाता है । अपनी इसी विशेषता के कारण भावुक और आदर्शवादी, साहसी और धीर तथा क्षण-प्रतिक्षण में घटित होने वाली विश्व की विविध गतिविधियों की जानकारी के इच्छुक जनों को पत्रकारिता अपनी ओर अधिकाधिक आकृष्ट करती जा रही

है। इसदृष्टि से भारत की पत्रकारिता और विशेषकर हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता पर एक महान् उत्तर-दायित्व है। भारतीय वैचारिक क्रांति और उत्क्रांति की सफलता की बहुत बड़ी जिम्मेदारी हिन्दी-पत्रकारों पर है ।

निराला जी एक युग प्रवर्तक पत्रकार और साहित्य साधक थे। उन्होंने युगचेता विचारक के रूप में भारतीय जनता की चित्तवृत्तियों का व्यापक तथा सूक्ष्म अध्ययन किया था। अपनी संवेदनशील तथ्यनिरूपिणी लेखनी से जन-जीवन की ज्वलंत समस्याओं का जैसा स्पष्ट चित्र अपने कथा-साहित्य में उन्होंने अंकित किया है वैसा प्रायः अन्यत्र दुर्लभ है। निराला का साहित्य जीवन की विषम समस्याओं से रू-ब-रू होता है। उन्होंने अन्तर्भेदिनी दृष्टि से उन समस्यओं का विश्लेषण किया है निराला ने अपने पत्रों में जन-देवता की उपासना की है और इसीलिए वे जन-मन में वास्तविकता की प्राण-प्रतिष्ठा करने में सफल भी हुए हैं। उन्होंने आदर्श को विश्वसनीय बनाने की भरसक चेष्टा की है और यथार्थ का बेलौस और बेलाग चित्रण किया है। अस्तु, पत्रकार और साहित्यकार निराला के सम्बन्ध में व्यापक धरातल पर विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन और अनुसंधान करने की उपादेयता स्वयंसिद्ध है।

वस्तुतः युग-दृष्टा पत्रकार हुए बिना आधुनिक युग के किसी भी साहित्य-कार को सफलता की महोच्च मंजिल नहीं मिल सकी है। निरालाजी पत्रकार और साहित्यकार दोनों है। यद्यपि पत्रकार के रूप में वे उतने विख्यात नहीं हो पाये तथापि हिन्दी पत्रकारिता में उनकी देन अविस्मरणीय है यदि निराला पत्रकार न होते तो आधुनिक युग के महान् साहित्यकार के रूप में उनकी इतनी प्रतिष्ठा स्यात् ही हो पाती। अभिप्राय यह कि उनके पत्रकार ने उनके साहित्यकार को बहुत पुष्ट और परिमार्जित किया है। यदि ऐसा न होता तो शायद ही उन्हें युग-प्रवर्तक होने का श्रेय मिलता। उनकी साहित्यिक पत्रकारिता में इसी तथ्य को प्रमाण-पुरस्सर रूप में प्रोद्भासित करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

भारतेन्दु, महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा निरालाजी को साहित्यिक पत्रकारिता का पुरोधा कहा जा सकता है। निरालाजी सन् १९२२ से सन् १९४१ तक निरंतर पत्रकारिता के माध्यम से अपने स्वप्नों के साहित्यिक संसार को बसाने का अथक परिश्रम करते रहे। उन्होंने पत्रकारिता को कला, वृत्ति और सेवा के रूप में स्वीकार किया और भारतीय जनता की ज्ञान-वृद्धि तथा उसकी चेतना के स्वातंत्र्य को जगाने के लिए काम किया। पत्रकार निराला के सामने आर्थिक

समस्या मुँह बाये खड़ी थी परन्तु मनस्वी निराला ने उससे हार नहीं मानी एक योग्य साहित्य-संपादक की भाँति ही उन्होंने पूरी अर्थशुचिता के साथ समन्वय, मतवाला, सुधा तथा रँगीला का संपादन कर लोकजीवन को जाग्रत, गतिशील और स्वतंत्र बनाने के दायित्व को सफलतापूर्वक निभाया। पत्रकार के रूप में निराला पर्याप्त प्रभावी रहे। उन्होंने पत्रकारिता के माध्यम से एक राष्ट्र-नेता की भाँति ही सामाजिक चेतना के प्रत्येक स्तर पर अपनी जिम्मेदारी निभायी धनार्जन उनका लक्ष्य नहीं था। पत्रकार निराला का उद्देश्य जनहित की रक्षा करना था। निराला साधारण मनुष्य के हित-संपादन हेतु मित्र उपदेष्टा और और रक्षक के रूप में लिखते थे। उन्होंने जनसमूह की सेवा के प्रति उत्तर-दायित्व का अनुभव कर ही अपने को हिन्दी-पत्रकारिता के क्षेत्र में खपाया था उन्होंने जड़ कागज के टुकड़ों में प्राण फूँककर स्थायी, यथार्थ और दीर्घकालिक प्रभाव डालनेवाली सामूहिक चित्तवृत्तियों को अंकित किया था। इस कारण साहित्यकार निराला की अपेक्षा पत्रकार निराला किसी भी तरह कम प्रतिष्ठा के पात्र नहीं है। अस्तु, यह पत्रकार निराला के अज्ञात, अचर्चित और जिज्ञासु व्यक्ति और रचनाकार के अध्ययन की दिशा का एक विनीत प्रयास है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं की संपादन-कला तथा साहित्यिक पत्रकारिता के स्वरूप का विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत सन् १८२६ से प्रकाशित होनेवाले हिन्दी के प्रथम पत्र उदन्त मार्तण्ड से लेकर सन् १९२८ तक सुधा– जैसी शुद्ध साहित्यिक पत्रिकाओं के विकास का विश्लेषण हुआ है और साथ ही साहित्यिक पत्रकारिता की आचार-संहिता पर भी विचार किया गया है।

अध्याय तीन में महाकवि निराला के पत्रकार व्यक्तित्व तथा उनकी पत्रकारिता के प्रेरणा स्रोतों का विश्लेषण किया गया है। इसके साथ ही निराला जी को एक सफल सम्पादक की कसौटी पर परखकर उनके संपादन-शिल्प को रेखांकित किया गया है। इस अध्याय में यह भी सिद्ध करने का विनम्र प्रयास किया गया है कि निराला के सामने वे कौन-सी स्थितियाँ थी जिनके कारण उन्होंने पत्रों के सम्पादन का भार सँभाला।

चौथे अध्याय में निराला द्वारा सम्पादित प्रथम पत्र समन्वय की विषय-वस्तु प्रस्तुत तथा उसकी विशिष्ट सम्पादकीय शैली की समीक्षा की गयी है।

अध्याय पाँच में मतवाला के संपादन का आकलन किया गया है। वास्तव में निराला को साहियिकरूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय मतवाला जैसे पत्र को ही है। इस बात का अपेक्षित विवेचन भी यहीं किया गया है।

छठें अध्याय में निराला-द्वारा परोक्षरूप में सम्पादित पत्र सुधा और उसमें प्रकाशित उनकी विविध सम्पादकीय टिप्पणियों तथा उनकी सम्पादन-नीतियों आदि पर विस्तार से विचार किया गया है।

निराला ने रँगीला संज्ञक लघु पत्र का भी संपादन किया था। सातवें अध्याय में उसी के विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

पत्रकार निराला की विशिष्ट उपलब्धियों का विश्लेषण-विवेचन आठवें अध्याय में किया गया है। रचनात्मक गद्य प्रणयन, वैचारिक क्रान्ति, नयी विधाओं के प्रवर्तन, शुद्ध साहित्यिक पत्रकारिता के विकास के उपक्रम आदि का विशद पर्यालोचन ही इस आठवें परिच्छेद का मुख्य विषय है। समापन में साहित्यकार निराला और पत्रकार निराला के सहसंबंध पर अत्यंत संक्षिप्त किन्तु सारगर्भ प्रकाश डाला गया है। अपने इस शोध-निबंध के सामग्री-संग्रह संयोजन तथा समाकलन के मार्ग में आयी अनेकानेक बाधाओं और विघ्नों का निवारण में बड़े साहस और धीरज के साथ करता रहा। 'देव पुरस्कार' विजेता और आधुनिक बिहारी स्व० श्री दुलारेलालजी भार्गव द्वारा स्थापित गंगा पुस्तकमाला कार्यालय लखनऊ जाकर मैंने सन् १९२७ से लेकर १९४२ तक निराला के सान्निध्य में निकलनेवाली 'सुधा' का अनुशीलन किया। श्रीयुत ज्योतिलाल भार्गव ने महती कृपाकर 'सुधा' की सारी प्रतियाँ अवलोकनार्थ मुझे प्रदान कीं एतदर्थ मैं उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूं। समन्वय मतवाला रँगीला आदि की सामग्री मैंने कलकत्ता जाकर संचित की है। इस प्रकार मैंने इस अध्ययन द्वारा निरालाजी के सम्पादकीय कृतित्व से सर्वप्रथम हिंदी-जगत् को परिचित कराने का एक विनीत प्रयास किया है। इस अनुशीलन से निराला के रचनात्मक व्यक्तित्व के पत्रकार-जैसे एक सर्वथ नये आयाम का उद्घाटन ही रहा है, इस बात से मैं संतुष्ट हूँ।

अथ से इति तक इस कृति के प्रणयन प्रेरक निर्देशक तथा इस मार्ग में आड़े आनेवाली तमामोतमाम विघ्नों बाधाओं को निवारित करनेवाले हैं गुरुवर डॉ० सूर्यप्रसादजी दीक्षित वे आधुनिक हिन्दी साहित्य और आधुनिक पत्रकारिता के पंडित हैं इसलिए उनका मैं ऋणी आभारी और कृतज्ञ हूँ। उनके बिना ऐसे कार्य का होना असंभव था।

समय-समय पर मुझे अपने पठन-पाठन-प्रति प्रेरणा 'प्रोत्साहन और आशीर्वाद हिंदी की महीयसी प्रोफेसर डॉ० (श्रीमती) सरला शुक्लअध्यक्ष हिंदी-विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय से मिलता रहा है। अतएवं एतदर्थ मैं उनके प्रति श्रद्धावनत हूं।

हिंदी के अनेकानेक विद्वानों से मुझे इस कार्य में बड़ी सहायता मिली है। उन सबके प्रति में आभार व्यक्त करता हूं। डॉ० नगेन्द्र, डॉ० शिवमंगल सिह 'सुमन', डॉ० हरवंशलाल शर्मा, डॉ०भगीरथ मिश्र, डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० राममूर्तित्रिपाठी, डॉ०आनंदप्रकाश दीक्षित, डॉ०देवेन्द्रनाथ शर्मा, डॉ० कुँवर चंद्र प्रकाश सिह, डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी के प्रति भी हृदय से आभार व्यक्त करता हूं क्योंकि उन्होंने इस कार्य को करने के लिए समय-समय पर बड़ी सहायता की है। अन्त में 'बाल-विनोद ग्रंथमाला' के अध्यक्ष श्री प्रभातकुमार भार्गव को हृदय से साधुवाद देता हूँ कि उन्होंने बिक्री की दृष्टि से अत्यन्त गरिष्ठ होते हुए भी इस ग्रंथ को प्रकाशित किया।

बी ७/८ बाल्दा कालोनी,
निशातगंज, लखनऊ
गणतंत्र दिवस, १९८४

–रमेशचन्द्र त्रिपाठी

विषयानुक्रमणी

क्रमांक विषय	पृष्ठ सं०
१. शुभाशंसा	
२. प्रस्तावना	
३. साहित्यिक पत्रकारिता और संपादन कला का स्वरूप	१
४. साहित्यिक हिन्दी-पत्रकारिता की पृष्ठ भूमि	१३
५. निराला का पत्रकार-व्यक्तित्व	३४
६. निराला द्वारा सपादित प्रथम पत्र 'समन्वय'	४२
७. निराला संपादित पत्रः 'मतवाला'	६२
८. निराला द्वारा परोक्षतः सम्पादित पत्र 'सुधा'	९०
९. निराला-सपादित लघु पत्र 'रंगीला'	१२०
१०. पत्रकार निराला की विशिष्ट उपलब्धियाँ	१२९
११. साहित्यकार निराला और पत्रकार निराला का सहसंबंध	१३८
१२. परिशिष्ट १ आधारभूत सहायक ग्रंथ	१३९
१३. परिशिष्ट २ ग्रंथानुक्रमणी	१४१
१४. परिशिष्ट ३ ग्रंथकारानुक्रमणी	१४६

साहित्यिक पत्रकारिता और संपादन कला का स्वरूप

ज्ञान और विज्ञान भाषा के माध्यम से एक दूसरे के निकट आते हैं। इसकी तकनीक का निर्धारण और कार्यान्यवन करने वाला संपादक कहा जाता है। विगत डेढ़ शताब्दी पूर्व भारतीय पत्रकारिता का प्रारंभ समाचार-संपादन से हुआ था जो आज एक उच्चकोटि का व्यवसाय बन गया है। सामाजिक स्पर्द्धा के इस युग में पत्रकारिता देश की सर्वाधिक सुदृढ़ शक्ति बन गयी है। 'लन्दन टाइम्स' के भूतपूर्व संपादक एच० विखेम स्टीड ने अपने भाषण में कहा था-"पत्रकारिता कला है, वृत्ति है, और जन-सेवा भी। जब तक कोई यह नहीं समझता कि मेरा कर्तव्य अपने पत्र के द्वारा लोगों का ज्ञान बढ़ाना, उनका मार्ग-दशन करना है, तब तक उसे पत्रकारी की चाहे जितनी प्रशिक्षा दी जाये, वह पत्रकार नहीं बन सकता। सच्चे पत्रकार के लिए यह भी आवश्यक है कि वह यह न भूले कि पत्र व्यापारिक और व्यावसायिक पृष्टता के बल पर ही उसको अपने कर्तव्य की पूर्ति का संबल मिल सकता है।"[1]

वस्तुत: पत्रकार-जगत् में संपादक का सर्वश्रेष्ठ और अत्यंत उत्तरदायित्व-पूर्ण स्थान है। योग्य संपादक का नेतृत्व प्राप्त करके ही कोई पत्र लोक-जीवन को जाग्रत और गतिशील बनाये रखने के दायित्व को निभा सकता है। संपादक पत्र-पत्रिकाओं की नीति का निर्धारक होता है। वह पत्रकारिता की आनुशासिक, न्यायिक और व्यावस्थापकीय त्रिधारा का संगम है। संपादक को निरंकुशता और आतंक-अराजकता से कोसों दूर रहनेवाला एवं सामाजिक भावना के प्रति उत्त-रदायित्व की प्रतिमूर्ति माना जा सकता है। पं० कमलापति त्रिपाठी ने पत्रकार के दायित्व के विषय में लिखा है- "संपादक वह पत्र रूपी संचालक है जिसका समाज के जीवन में गहरा प्रभाव छाया हुआ है, फलत: संपादक पर नैतिक जिम्मेदारी भी होती है। यदि पत्रों का लक्ष्य केवल धन कमाना नहीं है, यदि उनका

---

१. आधुनिक पत्रकार कला : रा०र० खाडिलकर, पृ० ६१

आदर्श जनहित की रक्षा करना तथा साधारण मनुष्य का साथी, मित्र, उपदेष्टा तथा रक्षक होना है तो पथ-प्रदर्शक संपादक होने के नाते, उस विशाल जन-समूह के प्रति उसका महान् उत्तरदायित्व है, जिसकी सेवा करने के लिए उसका पत्र प्रकाशित होता है। पत्र स्वयं निर्जीव और जड़ पदार्थ है। कागज के टुकड़ों में जान नहीं हुआ करती। इतने परिश्रम से तैयार किया गया पत्र पाठकों के हाथ में पहुँचने के घटे दो घंटे बाद रद्दी की टोकरी में ही स्थान पाता है, फिर उनका उपयोग भी रद्दी की भाँति होता है, पर इतना अस्थायी और अल्पकालिक जीवन लेकर भी वह सामूहिक रूप से जन-हृदय पर जो स्थायी और दीर्घकालीन प्रभाव छोड़ जाता है, उसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।"[1]

युग का समसामयिक इतिहास लिखने वाला सजग पत्रकार सत्य का आलम्बन लेकर ही बढ़ता है। पत्रकारों की वैचारिक एकता सुदृढ़ होनी चाहिए और यह तभी संभव है, जब वह राजकीय गुलामी से बचे। ज्ञान-स्वातंत्र्य की राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानववादी प्रक्रियाओं को सुलझाना स्वतंत्र पत्रकारिता के माध्यम से ही संभव है। नैतिक पत्रकारिता का आग्रह है कि सभ्य और शिष्ट मनुष्य दूसरों के सामने जिस शब्दावली का प्रयोग नहीं करता, उसे संपादक भी अपने पत्र में स्थान न दे। जन-सेवा और समाज-सेवा ही सच्ची पत्रकारिता है। निर्भीक पत्रकार अन्याय को देखकर स्थिर चित्त नहीं रह सकता। स्वतंत्र बुद्धि के आग्रह से रूढ़ियों से मुक्त होकर पत्रकारिता की सफल सेवा की जा सकती है। ऐसा संपादक मानव-समाज की नैतिक चेतना को सदैव प्रेरणा देता रहता है। 'नेशनल एण्ड पेन अमेरिकन प्रेस काँग्रेस' मैक्सिको के सन् १९४२ ई० के पत्रकार-सम्मेलन के अवसर पर पत्रकार के लिए दस धर्म-सूत्र उद्घाटित किये गये थे जो यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं :

१. अपने पत्र के सुनाम पर गर्व कीजिए। जोश के साथ अपने उत्साह पर व्यर्थ का अहंकार मत कीजिए।
२. पत्रकारी में जड़ता यदि मृत्युवत् है तो एक सुरापान [मानोटोनी] साक्षात मृत्यु है।
३. अवसर मत खोइए, बहुज्ञ बनिए, नवीनतम प्रदर्शन से मत चूकिये।
४. व्यक्ति से बड़ा समाज है, सरकार से बड़ा देश। मनुष्य मर्त्य है, संस्था और सिद्धान्त अमर हैं।

१. पत्र और पत्रकार : पं० कमलापति त्रिपाठी, पृ० १८८–१८९

५. शत्रु और मित्र दोनों बनाइए। मित्र ऐसे हों, जो आपसे आदर प्राप्त करें और शत्रु ऐसे, जिनसे आप द्वेष न कर सकें।

६. आर्थिक और साहित्यिक दोनों क्षेत्रों में आक्रमण का सामना आक्रमण से करिए। शांति से रहना हो तो अपनी रक्षा के लिए सदा तैयार रहिए।

७. दृढ़ रहिए पर दुराग्रही नहीं। परिवर्तनीय बनिए, पर कमजोर नहीं, उदार बनिए पर हाथ बिल्कुल ढीला मत छोड़िए।

८. स्पष्टवादी, स्वाभिमानी और स्फूर्त रहिए, तभी आपका सम्मान होगा। कमजोरी परलोक के लिए अच्छी है, नहीं तो वह पाखंड है।

९. जो कुछ छपा हो, सबकी जिम्मेदारी लीजिए। व्यर्थ दोषारोप पाप है। प्रतिष्ठा की हानि करनेवाली चीज न छापिए।

१०. घूस लेना और किसी का विज्ञापन लेख की तरह छापना पाप है। साथी पत्रकार की जगह लेने की इच्छा रखना, कम वेतन पर काम करना स्वीकार कर साथी पत्रकार को निकालना भी पाप है। रहस्य जतन से रखिए। पत्र स्वातंत्र्य या पत्र की शक्ति का उपयोग व्यक्तिगत काम के लिए कभी मत कीजिए।[1]

भारत में पत्रकारिता की अविरत गति से उन्नति हुई और होती जा रही है। हिन्दी एव अन्य भाषाओं के माध्याम से राष्ट्रीय पत्रकारिता आज विकास की ओर उन्मुख है।[2]

पत्रकारी कार्यो में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व संपादक का होता है। वह विशुद्ध साहित्यिक होकर भी सपादनकला का आवश्यक ज्ञान अर्जित करता है। संपादकीय तथा अन्य टिप्पणियाँ लिखते समय वह परिपक्व अनुभव और विचार स्वातंत्र्य की नजीर पेश करते हुए गम्भीर समस्याओं पर ओज और न्याय का निर्देश देते हुए लेखनी चलाता है। एक-दो डिग्रियाँ प्राप्त कर लेने या थोड़ा बहुत साहित्य रच देने से ही कोई संपादक हो जाए, ऐसा प्रायः असम्भव है। सफल संपादक अपनी व्यक्तिगत प्रवृतियों को अनुभव के संसार में उन्मुक्त विचरण करने की छूट देता है, निर्धारित समय पर तल्लीन होकर वह अपना कार्य पूरा

---

१. आधुनिक पत्रकार कला : रा०र० खाडिलकर, पृ० ५९–६०

२. वर्ल्ड मार्क इनसाइक्लोपीडिया आफ नेशन्स (एशिया और आस्ट्रेलिया), संपादक लुईस बैरन (१९६३), पृ० ८३

करता है, फिर भी वह सर्वथा स्वतंत्र नहीं जाता। एक अंक का कार्य समाप्त करते ही उसे आगामी अंक की सामग्री निर्धारित करने की चिन्ता होने लगती है । हर समय उसको जन-रुचि और सामाजिक प्रवृत्तियों के अध्ययन की चिन्ता रहती है समाज के लिए सरस जन-रंजक सामग्री देने का कर्तव्य संपादक निभाता है। संपादक राजनीतिक मठाधीशों की तरह कोई ऐसी शिक्षा नहीं देता, जिसमें सारे समाज की मनोवृत्ति या मनोभाव प्रकट हो। वह बातें कम करता है, लेखनी ही अधिक चलाता है । भारतीय पत्रकारिता का कभी कोई सीमित उद्देश्य नहीं रहा। भारतीय पत्रकार विभिन्न सम्मेलनों का आयोजन कर भारतीय पत्रकारिता के धर्मों का नियमन करते रहे हैं।

पत्रकार-मंडल में संपादक का स्थान सर्वप्रधान माना जाता है । पत्र के नीति-निर्धारण, रचनाओं के संशोधन-संपादन, प्रकाशित रचनाओं की समस्त अभिव्यक्ति के उत्तरदायित्व के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं के प्रतिनिधि रचनाओं और नेता के रूप में सबसे पहला नाम संपादक का आता है । प्रतिनिधि मासिक पत्रिकाओं के संपादक-मंडल में उप संपादक का भी नाम जुड़ा होता है । प्रधान संपादक की व्यवस्था के अन्तर्गत उप संपादक तथा पत्र कार्यालय के समस्त संपादकीय कार्य के प्रति जिम्मेदार होता है । वह स्थान और पद की दृष्टि से प्रधान संपादक से घटकर है, परन्तु उसका कार्य अनेक क्षेत्रों में प्रधान संपादक की तुलना में अधिक श्रम-साध्य माना गया है । वस्तुतः सफल लेखक और पत्रकार होने के लिए जन्म-जात प्रतिभा की अनिवार्यता निर्विवाद है।

मासिक पत्र का संपादक प्रमाद और शुष्कता से प्रेरित होकर कोई भी कार्य नहीं करता । वह आराम से बैठकर निश्चिततापूर्वक हवाई किले की रचना भी नहीं करता । दैनिक, साप्ताहिक और पाक्षिक पत्रों के संपादकों की अपेक्षा मासिक पत्र के संपादक को अपने कार्य हेतु अधिक समय मिलता है । यदि वह सुस्ती से काम करने की ओर प्रेरित हुआ तो मासिक पत्रिका का संपादकीय जीवन भविष्य के लिये भयावह हो जायेगा । हिन्दी-जगत् में जीवन और समाज के विविध पक्षों को लेकर अनेक प्रतिनिधि मासिक पत्रों ने जन्म लिया । उनके जन्मदाता संपादकों ने खून-पासीना एक कर उन्हें विकसित करने का प्रयत्न भी किया । उनके उत्तराधिकारी संपादकों की कार्यविधि अपने पूर्ववती संपादकों की उपेक्षा करती दिखाई दे रही है । विकास के लिए अबाध गति से श्रम करना पड़ता है । श्रम के अभाव में पत्रों की स्थिति नाजुक और अल्पायु हो जाती है और पाठकवर्ग पत्रिकाओं की प्रकाशित सामग्री की एकरसता से ऊब जाता है । पाठक एकरसता

नहीं, विविधता चाहता है, शुष्कता नहीं, रोचकता चाहता है। प्रतिष्ठित मासिक पत्र का संपादक एकपक्षीय संकीर्ण उद्भावनाओं का कभी समर्थन नहीं करता। ऐसे संपादक का जगत् अनेक दिव्याशाओं से पूर्ण होता है। प्रकाशित सामग्री का अच्छी तरह सम्पादन कर लेने से ही यदि पूर्ण सन्तुष्ट हो जाये तो समाज की विविध भावनाओं और जिज्ञासाओं का प्रतिनिधित्व कर सकने में वह असमर्थ होगा। सामग्री-संपादन के लिए तीस दिन का उसे अवकाश रहता है। दैनिक और साप्ताहिक पत्र क्रमानुसार चौबीस घंटे और सात दिनों में संपादित होकर निकलते हैं। मासिक पत्रिका के संपादन को आपाधापी और शीघ्रता में काम नहीं करना पड़ता। वह प्रत्येक अंक में अपनी संपादन-क्षमता की सहायता से समस्त सामग्री को लोकप्रिय बनाने के लिये अनेक प्रकार के प्रयत्न करता है। साप्ताहिक और दैनिक संपादकों की अपेक्षा उसे विशेष सतर्क रहकर लक्ष्य का संधान करना पड़ता है।

मासिक पत्रिकायें अनेक प्रकार की होती हैं। विज्ञान और विविध शास्त्रों की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाकर गंभीर ज्ञान देने वाली पत्रिका को विशेष सावधानी से संपादित करना पड़ता है। लोगों को फुरसत के समय में मानसिक खुराक कथा, कहानी और अन्य पत्रिकाओं से मिलती हैं। सैकड़ों सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, महिलोपयोगी, बालोपयोगी तथा अन्य सामाजिक चेतना की ओर उन्मुख, प्रेरित करनेवाली पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। योग्य-अनुभवी संपादक संबंधित विषयों के विशेषज्ञ लेखकों की रचनाओं को सर्वग्राह्य शैली में संपादित करता है। अल्प सामग्री के आधार पर अपने संपादन-चातुर्य से सफल सम्पादक पाठकों को अधिकाधिक ज्ञान देने का लक्ष्य बनाता है। मासिक पत्रिकाओं की संपादकीय टिप्पणियाँ सुस्पष्ट होनी चाहिए। पाठक के मन पर उनका स्थायी प्रभाव पड़ता है। योग्य संपादक सामयिक परिस्थितियों के वास्तविक तथ्यों का विश्लेषण करता है। किसी प्रकार के पूर्वाग्रह पर आधारित संपादकीय-मंतव्य में मौलिकता और चिंतन का स्वभावतः अभाव रहता है। कर्तव्य-निष्ठ संपादक सर्वसाधारण की भावनाओं को अपनी तर्कस्पर्शिनी दृष्टि से ग्रहण करता है और अपनी प्रतिभा के योग से उसकी सम्यक् मीमांसा करता है। अतः उसके संपादन कौशल की परख बिना किसी मानसिक अवरोध के, पत्र की उपयोगिता को ध्यान में रखकर करनी चाहिए। संपादक के लिए संकीर्ण राजनीति सबसे बड़ी बाधा बनकर सामने आती है। इस प्रकार के संपादक अपने मन की बात कभी भी व्यक्त करने में सफल नहीं होते। ऐसी संपादन-नीति के कारण

बाध्य होकर दल विशेष की राय पाठकों पर लादनी पड़ती है। परन्तु ऐसी वर्गवादी संकीर्णता को कभी सामाजिक समर्थन नहीं मिलता। मासिक पत्र की सामग्री शिष्ट और सरस होनी चाहिए। दैनिक और साप्ताहिक पत्रों की भाँति मासिक पत्र में अति सामयिक और अस्थायी प्रभाव से बचते हुए ठोस और महत्त्वपूर्ण सामग्री पाठकों को प्रदान करने के लिए संपादक भरपूर प्रयत्न करता है। सफल संपादक अपनी व्यापक दृष्टि और स्थिर अनुशासन को ध्यान में रखता है। उसे सुशिक्षित पाठकों के लिए रचनाओं के विषय-वस्तु को संतुलित रूप में संपादित करना पड़ता है। संपादक के निर्भीक और आलोचनात्मक विचारों का स्थायी महत्त्व होता है। अपने मौलिक विचारों का उद्घाटन करते समय संपादक अपने व्यक्तित्व की धारा प्रवाहित करता है। यदि मनोरंजन मासिक पत्रों का उद्देश्य मान लिया जाये तो संपादक को मनोविज्ञान का सरस सूत्राकार कहना अनुचित न होगा। प्रचार के बल पर मासिक पत्रों का जीवन दीर्घ और स्थायी होता है। सदैव व्यक्तिगत और सार्वजनिक प्रयत्नों के सहारे अनेक मासिक पत्रों ने उन्नति की है। संपादक अपने पत्र की ओर पाठकों के ध्यान को अधिकाधिक आकृष्ट करने लिए निरंतर प्रयत्नशील रहता है। योग्य संपादक अपने पाठकों की परिष्कृत रुचि को सदैव प्रमुखता देता है। प्रकाशित साहित्य की विविध विधाओं, यथा,कविता, कहानी, एकांकी, निबन्ध, शब्द-चित्र, समीक्षा आदि में उसे पाठकों की रुचि का ध्यान रखना पड़ता है। विविध स्तम्भों, यथा, महिला-मंडल, बाल-साहित्य, रजतपट, पुस्तक-परिचय, संकलनात्मक टिप्पणियों आदि में भी संपादक की नीति पाठकों की विचारधारा का सम्मान करती है। किसी पत्र की लोकप्रियता के यही मूलभूत कारण होते हैं। संपादक की निर्णायक बुद्धि, सन्तुलित दृष्टिकोण तथा 'इन्साइक्लोपीडिक' ज्ञान से दिनोंदिन पत्र की प्रगति होती है। सफल संपादकों और व्यावसायिक-सामयिक पत्रिकाओं में बड़ा भेद होता है। पत्र की संपादन-सामग्री की विशेषता तभी अक्षुण्ण रह सकती है, जब पाठक के मन पर उसकी गहरी छाप पड़े। संपादक के उत्साह को देखकर पाठक का हृदय सन्तुष्ट रहता है। योग्यतापूर्वक सम्पादित पत्र में प्रत्येक सामग्री पाठक को अपनी ओर आकृष्ट करती है। प्रकाशित रचनाओं में स्वस्थता और सुरुचि का अभाव पाठकों को उस आनन्द और मनः सन्तोष की अनुभूति नहीं करा पाता जो लेखक-सम्पादक-पाठक के त्रिवर्ग का युगपत् काम्य होता है। दैनिक और साप्ताहिक पत्रों के विविध समाचारों और टिप्पणियों का उपयोग मासिक पत्रों में विशेष ढंग से करना भी सम्पादन कला का महत्त्वपूर्ण दायित्व है। मासिक पत्र के सम्पादक अपने विचारित

प्रयत्न से पाठकों की विचारधारा को प्रभावित करते हैं। मासिक पत्रों में केवल चमत्कार और उत्सुकता पैदा करनेवाली रचनाओं की अधिकता नहीं होती। उत्तेजनात्मक और गहरी आस्थापरक सामग्री से मासिक पत्र गरिष्ठ प्रतीत होने लगते हैं, किन्तु सम्पादक अपने कौशल के बल पर ऐसी रचनाओं को भी सरस ढंग से उपस्थित कर सकता है। मासिक पत्र के सम्पादक को नवीन लेख तैयार करने में सच्चा सन्तोष मिलता है। वह सम्पादकीय तथा विविध प्रकार के स्तम्भों के सम्पादन में व्यस्त रहने के बावजूद जो समय निकाल पाता है, नवीन लेखकों के निर्माण में उसका उपयोग करता है। प्रमुख मासिक पत्रों में प्रसिद्ध लेखकों की पूरी रचनात्मकता देखने को मिलती है। प्रमुख मासिक पत्रिकायें वस्तुतः साहित्य, संस्कृति, समाज और भाषा के विकास में अपना अप्रतिम योगदान करती हैं। कथा-प्रधान मासिक पत्रिकाओं के सम्पादक सदा अच्छे कथाकारों की खोज में लगे रहते हैं।

कथा-साहित्य के विकास और उत्थान का अधिकांश श्रेय मासिक पत्रों के सम्पादकों को है। अनुभवी सम्पादक विशिष्ट कहानियों में चित्रित भावों या स्थापित विचारों को एक पाठक की हैसियत से हृदयंगम करता है। निपुण सम्पादक रचना के प्रति स्वाभाविक उत्कंठा जगाने के उद्देश्य से आवश्यक संशोधन परिवर्तन करने की छूट लिए रहता है। ऐसे अवसरों पर वह अपनी लेखनी का स्वतन्त्र प्रयोग करता है। सम्पादक कहानियों के उचित उद्देश्य निर्धारित कर पाठकों की कल्पना को तीव्रतर करने के प्रति सर्वदा सजग रहता है। प्रत्येक सम्पादक विविध रचनाओं का परिवर्धन, संशोधन, सम्पादन करते समय सच्चे मित्र की भाँति रचनाकार को समझा-बुझाकर उसमें परिवर्तन कर सकता है। धारावाहिक रूप से प्रकाशित होनेवाली रचनाओं के बारे में सदैव इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि ऐसी रचना में असाधारण ढंग से पाठकों की जिज्ञासा को वह जाग्रत रख सके। धारावाहिक रचनाओं में कथावस्तु का उलझाव पाठक की कुतुहल वृत्ति को समाप्त कर देता है। पाठक जिस रचना को आगामी अंक में पढ़ने के जिज्ञासु न हो, उसे धारावाहिक रूप में प्रकाशित करना व्यर्थ होता है। कथा-प्रधान मासिक पत्र का सम्पादक पाठकों की मानसिक प्रवृत्तियों का सूक्ष्म अध्ययन करता है तथा पत्र में जन-रुचि प्रधान रचनाओं को ही विशेष महत्त्व देता है। यदि पत्र की सत्यनीति को सम्पादक सफलतापूर्वक निभा ले जाता है तो पत्र की अधिकाधिक बिक्री बढ़ती जाती है और साथ ही साथ सम्पादक भी ख्याति प्राप्त करता जाता है। उस पत्र के माध्यम से प्रसिद्ध साहित्यकार अपनी विशिष्ट

रचनायें प्रकाशित करवाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। कहानियों के स्वरूप-निर्धारण करने की शक्ति भी सम्पादक में होनी चाहिए। प्रबुद्ध सम्पादक स्थापित कवि-कलाकारों तक को लिखने के लिए विषय, विचार और प्रेरणा देता है। अनुभवी और प्रख्यात लेखकों की रचनाओं के प्रकाशन के अतिरिक्त अन्यान्य महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर लिखने वाले नये लेखकों का निर्माण करना भी सम्पादक की विशेषता मानी जाती है। सम्पादक नये लेखकों के उचित और अनुचित तर्कों का निर्णय न्यायाधीश की तरह करता है। कृति की त्रुटियों और असंगतियों पर सम्पादक की दृष्टि तत्काल पड़ती है। सम्पादक लेखकों को विशेष विषय देकर उनसे उत्तम रचनाओं का सृजन भी करा सकता है। वह अपनी जानकारी और संगृहित सामग्री के आधार पर नये लेखकों की सदा सहायता करता है। मासिक पत्रों के अनेक सम्पादक सुप्रसिद्ध लेखकों के साथ रचनात्मक अनुबन्ध कर लेते हैं, जिससे लेखकों को आर्थिक सुविधा मिलती है और उनकी प्रतिभा से साहित्य का नवनिर्माण होता है। ऐसी सुविधा यद्यपि उन्हीं सम्पादकों को मिल सकती है जो अधिक धन व्यय करने में समर्थं हैं तथापि योग्य और अनुभवी सम्पादक पैसे के अभाव में नए लेखकों को प्रेरणा देकर उत्साहित करता रहता है। मासिक पत्र का सम्पादक साहित्य की विभिन्न विधाओं पर नए लेखकों की खोज में लगा रहता है। स्वयं उसे डाक से आई ढेर की ढेर रचनाओं में से काट-छाँटकर मौलिक प्रतिभाओं को परखने-पहचानने का विशेष श्रम करना पड़ता है। सम्पादक को बहुत-सी ऐसी रचनायें भी मिलती हैं, जिनका केवल कुछ ही अंश पत्रिका के योग्य होता है। सम्पादक ऐसे लेखकों की सामग्री का परिष्कार और परिमार्जन कर उन्हें प्रकाशन-योग्य बनाता है। नये साहित्यकारों को ऐसे ही पारखी सम्पादकों ने अपने अथक परिश्रम द्वारा साहित्य-क्षेत्र में स्थापित किया है। प्रख्यात मासिक पत्रों में लिखना प्रारम्भ कर अनेक लेखकों का कृतित्व और व्यक्तित्व साहित्य-जगत् में प्रतिष्ठित हुआ है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मासिक पत्र का सम्पादक साहित्यकार के व्यक्तित्व का प्रेरक और निर्माता होता है।

मासिक पत्रों के कुछ तथ्यों पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। पत्र की पृष्ठ-संख्या और आकार को ध्यान में रखकर ही उसके सम्पादक की निपुणता की परीक्षा होती है। प्रतिवर्ष सम्पादक को अपने पत्र के एक-दो विशेषांक भी प्रकाशित करने पड़ते हैं। सम्पादक पत्र की निर्धारित पृष्ठ-संख्या की सीमा में बँधकर ही उपयोगी सामग्री का चयन करता है। पत्र की पृष्ठ-संख्या और आकार का निश्चय हो जाने पर निर्धारित उद्देश्य के अनुसार सम्पादक भी अपना

सम्पादन सम्बन्धी कार्य प्रारम्भ करता है। मासिक पत्रों के उद्देश्यों में भिन्नता होती है। परन्तु प्रत्येक मासिक पत्र के सम्पादक का कर्तव्य है कि वह नवीन विषयों के अधिकारी लेखकों की रचनाओं को सरस ढंग से पाठकों को सुलभ कराने का प्रयत्न करे। सम्पादक अनावश्यक भूमिका और असंबद्ध विवरण से बचते हुए पाठक के मात्र मानसिक सन्तोष का ध्यान न रखकर उपयोगी रचनायें प्रकाशित करने का विशेष आग्रह रखता है। ऐसी उबा देनेवाली रचनाओं से पाठकों के समय का अपव्यय होता है। ऐसी असफल कृतियाँ पाठकों द्वारा कभी सराही नहीं जातीं।

सम्पादक एक पाठक की हैसियत से भी अपने पत्र में प्रकाशित रचनाओं की तात्त्विक उपलब्धियों और सीमाओं का स्पष्ट निर्णय करने वाला न्यायी माना जाता है। सच्चा सम्पादक बिखरी भावनाओं और विचारों को संयोजित करने वाला आचार्य होता है। वह रचना के गुणों की बारीकी से परख करता है और किसी रचना को प्रकाशित करने से पूर्व अपनी निर्णायक कसौटी पर कसकर हर पहलू से भली-भाँति देखता-समझता है। मासिक पत्रों में प्रकाशित रचनायें यदि ठीक और सही अर्थ का बोध कराती हैं तो सम्पादक की नीति समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी देन सिद्ध होती हैं। आज के व्यस्त जीवन में मासिक पत्रिकायें थोड़े अवकाश के समय की महत्वपूर्ण संगिनी मानी जाती हैं। मासिक पत्रों का गुण सरस मनोरंजन है। तथ्यहीन, निरर्थक और व्यर्थ शब्दजाल में उलझी भाषा से पाठक का समय नष्ट होता है। कभी तीन-चार परिच्छेदों को लगातार पढ़ जाने के बाद भी पाठक को यह ज्ञात नहीं हो पाता कि वस्तुतः लेखक का तात्पर्य क्या है? इस प्रकार की रचनाओं का कोई स्थायी महत्त्व नहीं होता। आजकल का व्यस्त पाठक भी समय-संकोच से ग्रस्त रहता है। अतएव, वह चाहता है कि कम से कम समय में किसी रचना की मुख्य-मुख्य सारी बातें स्पष्ट हो जायें। इसलिए भावुकतापूर्ण शब्दावली में लिखित लम्बे-लम्बे वाक्यों और परिच्छेदों वाली रचना से वह बहुत शीघ्र ऊब जाता है। क्रमबद्ध रूप से विषयानुसार थोड़े अर्थगर्भित शब्दों का प्रयोग करनेवाला लेखक उसे अपेक्षाकृत रुचिकर प्रतीत होता है। अच्छे लेखक सर्वदा व्यर्थ के शब्द-समूह के पचड़े में न पड़कर अपना विचार थोड़े से शब्दों द्वारा स्पष्ट करने के कायल होते है। मासिक पत्रों में प्रकाशित कथा के लम्बे-चौड़े वर्णनात्मक उल्लेख को आज का पाठक बिल्कुल पसन्द नहीं करता। आज के कथा-साहित्य में भावना, विचार तथा जीवन-संघर्षों को बहुत थोड़े में परन्तु सही-सही चित्रित करनेवाला लेखक ही सफल माना जाता है। रच-

नाओं का सबसे बड़ा निर्णायक आज आलोचक नहीं, पाठक माना जाता है। अपनी रचनात्मक उपलब्धि की वकालत स्वयं करनेवाले लेखकों को आज का पाठक उपहास्य समझता है। फलतः जो लेखक निपुण सम्पादकों की बुद्धि से लाभ उठा पाते हैं, वे शीघ्र ही जन-प्रिय हो जाते हैं। ऐसे लोकप्रिय लेखक पाठकों पर कहीं भी अपने विचारों को जबरदस्ती लादने का दुष्प्रयत्न नहीं करते।

सम्पादन के अन्तर्गत दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य रचनाओं के क्रम-निर्धारण का है। प्रत्येक लेख का मूल्यांकन कर लेने के बाद सम्पादक अपने पत्र की नीति के अनुसार उनके क्रम का निर्धारण करता है। आजकल के मासिक पत्र समाज के विभिन्न वर्गों के पाठकों को सन्तुष्ट करनेवाली सामग्री को प्रकाशित करते हैं। अतएव विविधता का समावेश आवश्यक होता है। कभी-कभी हिन्दी और भारतीय भाषाओं के मासिक पत्र अपनी भिन्नता के कारण महत्त्वपूर्ण निबन्ध और उपयोगी कथा-रचनाओं को चाहते हुए भी नहीं प्रकाशित कर पाते। मनोरंजक मासिक पत्रों के लिए आवश्यक है कि विविध विषयों से सम्बद्ध मुख्य लेख और दो-तीन मनोरंजक सामग्री को प्रत्येक अक में अवश्य स्थान दें। सम्पादक अपने विविध स्तम्भों के अन्तर्गत अधिक से अधिक सजीव सामग्री पाठकों को देना चाहता है। विविध प्रकार के स्तम्भ के नाम पर व्यर्थ की खानापूरी करने की अपेक्षा रचनात्मक कृतित्व को नियोजित करना ही अधिक सार्थक होता है। कभी कभी प्रबन्ध की इच्छा के कारण सम्पादक को विवश होकर ऐसी रचनाओं को भी स्थान देना पड़ता है जो पत्रिका के अनुरूप नहीं होतीं। निर्भीक सम्पादक ऐसे अवसरों पर भी अपनी नीति से च्युत नहीं होते। वे पाठकों को नवीन ज्ञान-विज्ञान से परिचित कराने के लिए मनोरंजन के विभिन्न उपकरण जुटाते हैं। नीति निपुण सम्पादक को कभी-कभी व्यवस्थापकीय आग्रह और अपनी नीति के बीच एक मध्यम मार्ग निकालने के लिए विवश हो जाना पड़ता है।

हिन्दी में ऐसे स्वाभिमानी साहित्यकारों की कमी नहीं है जो सम्पादक द्वारा अपनी रचना के एक शब्द के परिवर्तन को भी अक्षम्य मानते हैं। अनुभवी सम्पादक अपनी व्यवहार-कुशलता द्वारा इस प्रकार के प्रख्यात लेखकों की रचना में भी परिवर्तन कर लेने की अनुमति प्राप्त कर लेता है। अपने पत्र की ओर निरंतर अधिकाधिक पाठकों को आकर्षित करने लिए सम्पादक को कड़ा परिश्रम करना पड़ता है। प्रायः प्रत्येक पत्र में एक-दो ही ऐसी रचनायें प्रकाशित हो पाती हैं' जो सचमुच असाधारण कोटि की होती है' और जिनसे पाठक के मन को वास्तविक सन्तोष तथा सुख मिलता है। अनेक पत्रों की व्यक्तिगत मान्यताएँ और

परम्पराएं होती हैं । ऐसे पत्रों की सम्पादक-समिति पूर्व निर्णय कर लेती है कि विविध विषयों के अनेक स्तम्भों के लिए कितना स्थान सुरक्षित रखा जाए। जिन मासिक पत्रों में इस निश्चित नीति का अभाव होता है, उन पत्रों की सामग्री वैज्ञानिक ढंग से व्यवस्थित न होकर असम्बद्ध और क्रमहीन हो जाती है । जिन मासिक पत्रों में सचित्र यात्रा-विवरण, जीवनी अथवा अन्य प्रकार की विशेष रचनाएँ प्रकाशित होती हैं, उन पत्रिकाओं के सम्पादकों का कार्य भी विशेष जिम्मेदारी का होता है । कैसे चित्रों से पत्र की अधिक लोकप्रियता सभव है, इस परिकल्पना में भी सम्पादक का कम समय नहीं लगता । अन्यथा कभी-कभी निपुण से निपुण सम्पादक भी अच्छी रचनाओं को उचित रूप में प्रकाशित नहीं कर पाते ।

दैनिक और साप्ताहिक पत्रों की भाषा जन-सामान्य की सामाजिक भाषा होती है। परन्तु मासिक पत्रों की भाषा युग के साहित्यकारों और बौद्धिक समुदाय से विशेष सम्बन्ध रखती है। अस्तु, आवश्यक है कि मासिक पत्रों की विविध रचनाओं तथा सम्पादक की भापा सुस्पष्ट, सहज और प्रसाद गुण से परिपूर्ण हो। मासिक पत्र के सम्पादक की भाषा सम्बन्धी जिम्मेदारी विशेष महत्त्वपूर्ण होतीहै। पत्रों में प्रकाशित होनेवाली रचनाओं की भाषा पर सम्पादक का सर्वप्रथम ध्यान केन्द्रित होता है । मासिक पत्रों में प्रकाशित रचनाओं की भाषा का स्तर जन-सामान्य की दैनिक व्यवहार की भाषा से ऊँचा होता है । दैनिक और साप्ताहिक पत्रों की भाषा में अनेक प्रकार की त्रुटियाँ पाई जाती हैं और उन पर कोई विशेष ध्यान नहीं देता, परन्तु मासिक पत्रों में इस प्रकार की त्रुटियाँ निश्चय ही अक्षम्य मानी जाती हैं। मासिक पत्रों की सम्पादन-समिति के पास समय का अभाव नहीं रहता । मासिक पत्रों के सम्पादक ही एक प्रकार से भाषा का नियमन करते हैं और साहित्य-जगत् में नवीन युग के प्रतिष्ठापक कहे जाते हैं । अनेक मासिक पत्रों के लेखक आडम्बरपूर्ण शैली में कठिन भाषा लिखकर पत्र की लोकप्रियता पर आघात करते हैं । सर्व-सामान्य पाठको के लिए ऐसी रचनाओं की कोई उपयोगिता नहीं होती । निपुण सम्पादक किसी भी रचना में भाव-सम्पत्ति या विचार-सम्पत्ति रहने पर ही अ वश्यकतानुसार उसकी भाषा को सरस और सुबोध ढंग से सम्पादित कर के ही उसे प्रकाशित करता हैं । वह रचनाओं में प्राप्त लेखक की व्यक्तिगत विचारधारा में प्रायः कोई परिवर्तन नहीं करता । अनेक रचनाओं में पुनरावृति-दोष भी दिखाई पड़ता है । ऐसी पुनरावृत्तियों को सुधारना भी सम्पादक की जिम्मेदारी है। कथात्मक रचनाओं का शिल्पतंत्र सरस, सरल और उपयोगी तभी माना जा सकता है, जब कथानक और तद्गत चरित्रांकन की

क्षमता स्वाभाविक, सुन्दर और सहज हो। किसी रचना को सम्पदित करने से पूर्व स्वाभिमानी सम्पादक उसके लेखक से संशोधन की आवश्यक अनुमति प्राप्त कर लेता है। बिना लेखक की अनुमति प्राप्त किये किसी भी रचना को संशोधित करना सम्पादक के लिए उचित न्याय कार्य नहीं। मासिक पत्रों में रचनाओं का सिलसिलेवार सम्पादन सम्पादक के महत्त्वपूर्ण कार्यों में माना जाता है। सर्वश्रेष्ठ और विशिष्ट रचनाओं को पत्र के प्रारम्भ में स्थान देना होता है। प्रथम प्रकाशित रचना के विषय का ध्यान रखते हुए अन्य रचनाओं के नियमन में भी क्रम भिन्नता आवश्यक है। किसी भी पत्र की सामग्री पर पाठक पहले सरसरी निगाह डालता है और यदि उसे तत्काल यह ज्ञात हो जाता है कि पत्र की प्रकाशित सामग्री में विषयगत एकरसता है तो पत्र को विशेष रूप से पढ़ने की आवश्यकता वह नहीं समझता। मासिक पत्रों के सम्पादन के लिए व्यापक जानकारी की अत्यन्त आवश्यकता होती है। उन्हें सदैव ऐसी सामग्री किसी भी क्षण देने को तैयार रहना पड़ता है जिससे पाठक का आत्म-विश्वास जाग्रत हो सके। सम्पादक अध्ययनशील होता है। समसामयिक मौलिक प्रश्नों पर चिंतन करना भी उसके लिए नितान्त आवश्यक है। सम्पादन का दायित्व निभाते समय वह कर्मनिष्ठ, सत्यप्रिय और चुस्त रहकर अपने सम्पादन-र्धम का पालन करता है। सच्चा सम्पादक समसामयिक लोक-रुचि और लोक-विश्वासों का प्रतिनिधि होता है एवं राष्ट्र के सर्वतोन्मुखी मंगलविधान पर निरंतर दृष्टि रखता है। समाचार पत्र और मासिक पत्र समाज रूपी घड़ी की दो छोटी-बड़ी सुइयों-जैसे होते हैं। सब के लिए बोधगम्य भाषा में साहित्य प्रदान करने का सामाजिक दायित्व सम्पादक को निभाना पड़ता है। वह समाज की समसामयिक मनोरंजक रुचि को परिष्कृत करने का दायित्व लेकर अपने सम्पादकीय कर्तव्य में प्रवृत होता है ऐसा प्रायः देखा जाता है कि सम्पादन के क्षेत्र में प्रतिभावान, निपुण और श्रमशील व्यक्तियों को ही सफलता प्राप्त होती है।

मानव-मन परिवर्तनप्रिय होता है। इसलिए साहित्य की मान्यताएँ भी स्थिर नहीं रह पातीं। लोकरुचि उनमें क्रमशः परिष्कार करती रहती है। आधुनिक विज्ञान की निरंतर आगे बढ़ती हुई उपलब्धियों ने तो एतत्सम्बन्धी रहे सहे संशय को भी दूर कर दिया है, परन्तु साहित्य-क्षेत्र में इस तथ्य को अमान्य करनेवालों की भी कमी नहीं है। परिमाणतः समसामयिक रचनाओं को भी कुछ लोग प्राचीनता के चश्मे से अथवा प्राचीन रचनाओं को अर्वाचीन चश्मे से

देखते हैं। स्वभावतः वे रचना और रचयिता के साथ न्याय नहीं कर पाते। परन्तु एक सफल सम्पादक ऐसी असावधानी नहीं होने देता।

मानव-समाज का कल्याण वर्तमान साहित्यिक पत्रकारिता से ही सम्भव है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निर्भीकतापूर्वक सम्पादन-नीतियों का पालन करना आवश्यक है। सम्पादक की सफलता इसी में है कि वह परिश्रमपूर्वक इस उत्तरदायित्व को सतत निभाने की चेष्टा करता रहे। हिंदी-पत्रकारिता का श्रीगणेश कला और साहित्य की सेवा-भावना को लेकर हुआ था। व्यवसाय से उसका विशेष सम्बन्ध नहीं था। परन्तु पाश्चात्य पत्रकारिता की अंधानुकृति के कारण भारतीय सम्पादकों को भी व्यवसाय-चक्र में उलझ जाना पड़ा। परन्तु पाश्चात्य सम्पादक जहाँ अपनी व्यावहारिक नीति के कारण उत्तरोत्तर सफल होता रहा, वहाँ एतत्देशीय सम्पादक अपनी एकांगिकता के कारण निरंतर कृतकार्य नहीं रहा। इस नाते बहुत कुछ हमारे यहाँ परिश्रमशील, जिज्ञासु और तथ्यान्वेषी सम्पादकों की बड़ी कमी रही। यद्यपि स्वतंत्र भारत में 'प्रेस स्वातन्त्र्य' संविधान-द्वारा मान्य है, तथापि सरकार राष्ट्रीय हितों के लिए पत्रकारिता पर अनेक प्रकार के मर्यादित नियंत्रण रखती है। भारत में यद्यपि आजकल पत्रकारिता जन-सामान्य प्रचलित होकर एक प्रतिष्ठित व्यवसाय का रूप ले चुकी है, तथापि उसकी नैतिकता जन-समर्थित भावनाओं का सही अर्थों में सफल प्रतिनिधित्व आज नहीं कर पा रही है। सन् १९५० ई० में अखिल भारतीय सम्पादक सम्मेलन के अवसर पर जवाहरलाल नेहरू ने पत्रकारों को सम्बोधित करते हुए कहा था-जीवन में जो कुछ निकृष्ट है उसका क्रमशः बढ़ते जाना रोकने में सहायता करना पत्रकारों का कर्तव्य है। पत्रकारों को अधिक ऊँचे दर्जे की तथा अधिक उज्ज्वल सामाजिक चेतना के निर्माण में ही सहायता नहीं करनी है वरन् जीवन की छोटी-छोटी बातों में सामाजिक व्यवहार करना सिखाने में भी।"[1] हिन्दी पत्रकारिता को सम्बोधित करते हुए नेहरू ने जिस बात का सकेत किया था, उसके प्रति आज का सम्पादक आस्थावान् होता जा रहा है, यह एक शुभ लक्षण है।

स्वतंत्र भारत में पत्रकारिता और सम्पादन-कला दिनोंदिन विकास हो रहा है। निःसंदेह आज की पत्रकारिता सर्वतोभावेन राष्ट्रीय विचारों और भावों का प्रतिनिधित्व करती हुई निरंतर अग्रसर होती जा रही है।

---

१. भारतीय पत्रकार-कला : संपादक-रोलैंड ईबुल्स ले, पृ० ३४८

साहित्यिक हिन्दी-पत्रकारिता की पृष्ठभूमि

अद्यावधि प्राप्त सूत्रों के अनुसार हिन्दी में प्रकाशित पहला साप्ताहिक पत्र है 'उदन्त मार्तण्ड'। इस साप्ताहिक पत्र का प्रथम अंक ३० मई, १८२६ को प्रकाशित हुआ था और ११ दिसम्बर, १९२७ को इसका अन्तिम अंक निकला। इसके प्रथम पृष्ठ पर लिखा था :

'उदन्त मार्तण्ड'

दिवाकांतकान्तिं बिना ध्वान्तान्तं चाप्नोति तद्वज्जगत्यलोकः ।
समाचारसेवामृते ज्ञप्तमाप्तुं न शक्नोति तमाकरोमीति यत्नः ॥[1]

प्रथम अंक के अन्त में एक अन्य श्लोक भी छपा था :

युगुलकिशोर : कथयति धीर : सविनयमेतत् सुकुलजवंश : ।
उदिते दिनकृत सतिमार्तण्डे तद्वत् विलसति लोक उदन्ते ॥[2]

और सबसे आखिर में छपा था—'अंक उदन्त मार्तण्ड पुटोला के अमड़ातला की गलि के ३७ अंक की हवेली के मार्तण्ड छापा में हरसतवारे मंगल को छापा होता है जिनको लेने का काम पड़े वे उस छापाघर में अपना नाम भेजने हि से उनके समींप भेजा जायेगा। उसका मोल महिने में दो रुपया जिन्होंने सहि किई है जो उनके पास न पहुंचे (तो) उस छापाखाने में कहला भेजने हि से तुर्त उनके यहाँ भेजा जायेगा।"[3]

१. उदन्त मार्तण्ड, मुख पृष्ठ, प्रथम अंक ३० मई १८२६ ई०

२. उदन्त मार्तण्ड, अंतिम पृष्ठ, प्रथम अंक, ३० मई, १८२६ ई०

३. वही

इस साप्ताहिक के जन्मदाता युगुलकिशोर सुकुल एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। कानपुर से आकर कलकत्ते की सदर दिवानी अदालत में पहले उन्होंने क्लर्की की बाद में वकील हो गये। इनको फारसी और अंग्रेजी का सामान्य ज्ञान-प्राप्त था। 'समाचार चन्द्रिका' नामक बंगला पत्र के ११ मार्च, १८२६ के अंक के नगरीर नूतन समाचार पत्र' की विज्ञप्ति से ज्ञान होता है कि इस पत्र का विज्ञापन अन्य भाषा के पत्रों में भी प्रकाशित हुआ था। इस साप्ताहिक के १७ जून १८२६ के अनुसार-अंग्रेजी और बंगला पत्रों के बाद कुछ दिनों तक उर्दू में पत्र प्रकाशित हुए और अब नागरी भाषा में 'उदन्त मार्तण्ड' प्रकाशित हुआ है, जिससे हमें बड़ी प्रसन्नता हुई।' पण्डित युगुलकिशोर सुकुल हिंदी के इस प्रथम पत्र के सम्पादक थे। मुद्रक और मैनेजर थे श्री मन्ना ठाकुर। इसमें प्रकाशित सम्पादकीय लेखों के पढ़ने से प्रतीत होता है कि उसके सम्पादक का उर्दू, हिंदी तथा अंग्रेजी के अतिरिक्त ब्रजभाषा पर भी अच्छा अधिकार था। 'उदन्त मार्तण्ड' के संस्कृत श्लोकों के नीचे ब्रजभाषा के कुछ दोहे भी छपे हैं-

दिनकर कर प्रगटहि दिनहिं यह प्रकाश अठयाम।
ऐसो रवि जब उयो' महि जेहि तेहि सुख को धाम॥
उत कमलिन विगसति करत बढ़त चावचित बाम।
लेत नाम या पत्र को होत हर्ष अरु काम॥

'उदन्त' का अर्थ है समाचार। 'उदन्त मार्तण्ड' हिंदी-पत्रकारिता-जगत् में आदि सूर्य की किरणों के रूप में अवतरित हुआ था। जिस समय हिंदी में इस प्रथम साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन हुआ, उस समय 'जामे जहनुमा'नामक फारसी और समाचार दर्पण' नामक बंगला-पत्र सरकार की सहायता से प्रकाशित हो रहे थे। कलकत्ते में उस समय हिंदी जानने वालों की संख्या कम नहीं थी, परन्तु यह पत्र एक वर्ष सात महीने तक प्रकाशित होकर समाप्त हो गया। हिंदी-पत्रकारिता के इतिहास में इस पत्र का ऐतिहासिक महत्व है। सरकार द्वारा हिंदी की उपेक्षा-नीति का ज्वलन्त दृष्टान्त 'उदन्त मार्तण्ड' कहा जा सकता है। इस साप्ताहिक पत्र के ११ दिसम्बर सन् १८२७ के अंक में ब्रजमिश्रित हिंदी-गद्य में इसके प्रकाशन के बन्द होने की सूचना दी गयी। 'उदन्त मार्तण्ड' के प्रकाशन के पूर्व से ही मुंशी सदासुखलाल और रामप्रसाद निरंजनी हिंदी-गद्य के स्वरूप का परिमार्जन करते थे। इस साप्ताहिक को हिंदी को ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि लल्लूलाल और सदलमिश्र की तुलना में युगुलकिशोर सुकुल की हिंदी कम परिष्-

कृत नहीं थी। पण्डित अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी के शब्दों में-'उदन्त मार्तण्ड' के सम्पादक बहुभाषज्ञ थे। यह उनका बड़ा भारी गुण था, यद्यपि यह डेढ़ ही वर्ष निकला तथापि प्रूफ की भूलें जो प्रेसों में बराबर होती रहतीं हैं, उनका ध्यान रखकर हमें निः संकोच कहना पड़ता है कि 'उदन्त मार्तण्ड' हिंदी का पहला समाचार-पत्र होने पर भी भाषा और विचारों की दृष्टि से सुसंपादित पत्र था।[१]

जिस समय शासन की भाषा अंग्रेजी थी, उस समय बंगाल के नेता राजा राममोहन राय, केशवचन्द सेन और बंकिमचन्द चटर्जी' आदि ने हिन्दू जनता के विचारों को शासन की भाषा में व्यक्त करने के उद्देश्य से अँग्रेजी में पत्र निकालने का प्रयत्न किया था। कलकत्ते में हिंदू हेराल्ड' नाम वाले एक प्रेस की स्थापना की गई। राजा राममोहन राय के प्रयत्न से चार भाषाओं में हिंदू हेराल्ड' का प्रकाशन २० मई, १८२९ से प्रारंभ हुआ। 'बंगदूत' नामक पत्र के बंगला, हिंदी और फारसी में ही तीन संस्करण प्रकाशित होते थे। हिंदी संस्करण वाले बंगदूत' के प्रारम्भ में निम्नलिखित चार पंक्तियां मुद्रित होती थीं :--

दूतन की रीति बहुत थोरे में भाषै।
लोगन की बहु लाभ होय याही तैं लाखै॥
बंगाल को दूत पूत यहि वायु को जाने।
होय विदित सब देश क्लेश को लेश न मानै॥[२]

१८४५ में बनारस से 'बनारस अखबार' प्रकाशित हुआ। हिन्दी प्रदेश से प्रकाशित होने वाला यह पहला साप्ताहिक पत्र था। परन्तु इसे भारतीय भाषाओं में प्रकाशित प्रथम समाचार-पत्र के रूप में मान्यता दी गई।[३] यद्यपि इस पत्र की भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी थी तथापि वह उर्दू-फारसी के शब्दों से ओत-प्रोत होता था। इस पत्र के सम्पादक मराठी-भाषी श्री रघुनाथ थत्ते थे।

कलकत्ता के इण्डियन सन प्रेस से 'मार्तण्ड' नामक साप्ताहिक पत्र पाँच भाषाओं में एक साथ १८४६ से प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष कलकत्ते से 'ज्ञानदीप' नामक दूसरा पत्र भी निकला था। इन दोनों समाचार-पत्रों के सम्बन्ध में अभी तक हमें कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं प्राप्त हुई है। बंगला और हिन्दी में

१. समाचार पत्रों का इतिहास : पं० अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी, पृ० १०२
२. बंगदूत', प्रथम अंक, १० मई सन् १८२९ ई०
३. दि फर्स्ट इण्डियन लैंग्वेज न्यूज पेपर इन हिन्दी एपीयर्ड वाराणसी इन १८४५ वर्ल्ड मार्क इनसाइक्लोपीडिया आफ नेशन्स (एशिया एण्ड आस्ट्रेलिया) सम्पादक–लुई-बैरान, पृ० ९३

एक साथ १८४९ में 'जगद्दीपक भाष्कर' नामक समाचार-पत्र निकला था। श्री युगुलकिशोर सुकुल ने १८५० में पुन: 'सामदण्ड मार्तण्ड' नाम से एक और समाचार-पत्र प्रकाशित किया। इसी समय काशी से तारामोहन मैत्र के सम्पादन में 'सुधाकर' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। भाषा और सम्पादन की दृष्टि से इस पत्र का स्थायी महत्त्व है। इसकी भाषा विशुद्ध हिन्दी थी। रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास में सदासुखलाल द्वारा सम्पादित और आगरे से प्रकाशित 'बुद्धिप्रकाश' नामक समाचार-पत्र का भी उल्लेख मिलता है।[१] भरतपुर दरबार से उर्दू और हिन्दी में एक साथ 'मजहरूल-सरूर' १८५२ में प्रकाशित हुआ। १८५३ में ग्वालियर स्टेट से 'ग्वालियर गजट' भी निकला था। १८५५ में आगरा से दो और साप्ताहिक निकले। राजा लक्ष्मण सिंह के सम्पादन में 'प्रजाहितैषी' नामक साप्ताहिक-पत्र का प्रकाशन भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। दूसरा साप्ताहिक 'सर्वहितकारक' था।

१८५७ में राष्ट्रीयता की अपूर्व चेतना जाग्रत हुई थी। उथल-पुथल की ऐसी स्थिति में जन-भावना का प्रतिनिधित्व करने वाला एक भी समाचार-पत्र उस समय दिखायी नहीं देता। हिंदी-समाचार पत्रों की यह हीन अवस्था साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में १८६८ तक बराबर बनी रही। इन वर्षों में अनेक समाचार-पत्र प्रकाशित हुए, परन्तु स्थायी महत्त्व के पत्रों की कमी फिर भी बनी रही।

आधुनिक हिंदी के गद्य का निर्माण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रयत्न से प्रारंभ हुआ। उन्होंने हिंदी-गद्य के रूप-निर्माण के लिए अनेक युग प्रवर्तनकारी प्रयत्न किए। साहित्य की प्रत्येक विधा में उन्होंने रचनाएँ कीं। हिंदी-समाचार-पत्रों की खटकने वाली कमी को दूर करने का उन्होंने स्तुत्य प्रयत्न किया। 'कविवचन सुधा' पत्रिका १८६८ में काशी से प्रकाशित हुई। इसमें अनेक प्राचीन और नवीन कवियों की कविताओं का संकलन-सम्पादन किया गया। प्रारंभ में 'कविवचन सुधा' मासिक पत्रिका के रूप में निकलती थी, परन्तु बाद में समाज और देश की दु:खद अवस्था से प्रेरित होकर भारतेन्दु ने इसे पाक्षिक कर दिया। उसकी एक सौ प्रतियाँ सरकार क्रय करती थी। 'कविवचन सुधा' की दृष्टि में शासक और शासित समान थे। इसकी प्रकाशित रचानाओं से राष्ट्रीय चेतना का अभूतपूर्व स्वरूप प्रकट हुआ। इस पत्र के प्रारंभिक अंकों में चंदबरदाई, जायसी, कबीर, देव, बिहारी, दीनदयालगिरि और गिरिधरदास की अनेकानेक काव्य रचनायें

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३९६

प्रकाशित हुई। कविवचन-सुधा' को राधाचरण गोस्वामी, काशीनाथ खत्री, श्रीनिवासदास, गदाधर सिंह, तोताराम वर्मा, नवीनचंद राय, सुमेर सिंह, गोपालचंद्र राय आदि अनेक महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त हुआ। सूर, मीरा एवं घनानंद आदि की काव्य-परम्परा में स्वयं भारतेन्दु ने अत्यन्त सरल कवितायें लिखी। यह पत्र प्रायः विलंब से निकला करता था। भारतेन्दु ने इसे ठीक समय पर प्रकाशित करने की सुदृढ़ व्यवस्था के लिए श्री चितामणिराव फड़के का सहयोग भी प्राप्त किया, परन्तु दिनों-दिन इसकी प्रकाशन-व्यवस्था दयनीय होती गयी। भारतेन्दु ने बाद में इस पत्र में लिखना बन्द कर दिया। भारतेन्दु के अवसान के बाद इस पत्र की अन्तिम साँस भी निकल गई।

१८६८ में सदासुख के सम्पादकत्व में प्रयाग से 'वृत्तान्त दर्पण' का प्रकाशन हुआ। १८६९ में कुल दस पत्र निकले। गिरिजाप्रसाद सिंह के सम्पादकत्व में मेरठ से मंगलसमाचार' भी इसी समय निकला। आगरा से जगत्-समाचार, 'जगदानंद पापमोचन' नामक पत्र भी इसी वर्ष प्रकाशित हुए। मेरठ से 'विद्यादर्श और नैनीताल से 'समय-विनोद' का प्रकाशन भी इसी बीच हुआ। १८७० में नागपुर का सरकारी अखबार 'नागपुर गजट' (उर्दू, हिंदी, मराठी) तीन भाषाओं में प्रकाशित हुआ और आगरा से 'आगरा अखबार' निकला। सदानंद सन्याल के सम्पादन में १८७१ में 'अल्मोड़ा अखबार' पत्र निकला। विशुद्ध प्रचलित हिंदी को लेकर चलने वाला यह पत्र भी बहुत दिनों तक नहीं निकल सका। इसी वर्ष कुछ सुधारकों ने कानपुर से 'हिंदूप्रकाश' और प्रयाग से प्रयागदूत' निकला। श्री कार्तिकप्रसाद के सम्पादकत्व में कलकत्ता से १८७२ ई० में 'हिंदीप्रकाश' का प्रकाशन हुआ। इसी समय श्री केशवराम भट्ट के सम्पादन में मानिकतल्ला स्ट्रीट कलकत्ता से 'बिहार-बंधु' साप्ताहिक निकाला गया। १८७३ में भारतेन्दु ने 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' मेडिकल हाल प्रेस से प्रकाशित करवायी। यह पत्र सुन्दर लेखों से सम्पन्न और मुद्रण तथा अलंकरण की दृष्टि से भी अब तक के प्रकाशित हिंदी-पत्रों से भिन्न और बेहतर था। इस पत्र में बड़ी उमंगमयी रचनायें निकलती थीं। १८७४ में इसका नाम परिवर्तित कर इसे 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' नाम से प्रकाशित किया जाने लगा। इस मासिक पत्र में साहित्यिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, दार्शनिक एवं सामाजिक विषयों के लेखों के अतिरिक्त व्यंग्यप्रधान रचनायें और आख्यायिकायें छपती थीं। इस पत्र की एक सौ प्रतियाँ सरकार खरीदती थी। सन् १८७५ ई० प्रयाग से शिवरत्न शुक्ल के सम्पादन में 'प्रयागधर्म-प्रकाश' तथा सनातन धर्म के सिद्धान्तों के प्रचार के लिए 'प्रयाग-धर्म

नाम वाले दो धार्मिक पत्र प्रकाशित किये गये। 'सुदर्शन समाचार' जान हीवेट ने पहले मिर्जापुर से बाद में बनारस ईसाई मिशनरियों के सिद्धान्तों के प्रचारार्थ प्रकाशित किया। हिन्दी के विविध पक्षों के प्रचार के साथ ही साथ इन पत्रों का उद्देश्य सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का प्रसार भी था। इन पत्रों का जीवन अत्यन्त अल्प होता था। इनमें सम्पादकों की दृष्टि इतनी संकीर्ण होती थी कि जन्म लेने के कुछ ही वर्षों बाद उनकी समाप्ति भी हो जाती थी।

भारतेन्दु की प्रेरणा से श्री बालेश्वर प्रसाद बी०ए० ने १८७६ में 'काशी-पत्रिका' का प्रकाशन आरंभ किया। इस पत्र का महत्त्व इसी से जाना जा सकता है कि भारतेन्दु ने 'सत्य हरिश्चन्द्र, 'कर्पूरमंजरी' आदि अपने प्रमुख नाटकों को पहली बार इसी पत्र में प्रकाशित करवाये। इस पत्र का सम्पादन भारतेन्दु की अनेक पत्रिकाओं के सम्पादन से मिलता-जुलता है। भविष्य में यह साप्ताहिक रूप में प्रकाशित किया जाने लगा। इस पत्र के माध्यम से उर्दू की भावनाएं भी व्यक्त की गई। श्री बालेश्वरप्रसाद के डिप्टी कलेक्टर हो जाने पर श्री लक्ष्मीशंकर मिश्र इस पत्र के सम्पादक हुए। उन्होंने सरकारी सहायता से इसको छात्रोपयोगी बनाया इस पत्र के सम्पादकों ने विभिन्न विषयों का चयन कर अध्यापकों से कविता लिखाने की परिपाटी प्रारम्भ की। १८७७ की 'काशी पत्रिका' के कई अंकों में श्रीधर पाठक की 'ऊजड़ ग्राम' कविता तथा 'तिलिस्मी सुन्दरी' नामक विषय पर कौतूहल प्रधान लेख भी छपे। १८९४ में कालाकाँकर नरेश राजा रामपालसिंह ने कौंसिल में 'काशीपत्रिका', 'अवध अखबार' और 'इंस्टीच्यूट गजट' के विरोध में प्रश्न उठाकर इन पत्रों की सरकारी सहायता बंद करवा दी। फिर भी १८९६ तक किसी प्रकार 'काशी-पत्रिका' का प्रकाशन होता रहा। इसकी भाषा उर्दू-हिन्दी मिश्रित होती थी। उदाहरणस्वरूप एक सम्पादकीय टिप्पणी उद्धृत की जा रही हैं–हवा एक साफ चीज है, जो नजर नहीं आती। जिसमें मजा और बू नहीं होती। जो हर वक्त सिमट सकती है, फैल सकती है और हर तरफ हरकत कर सकती है।[1]

इसी वर्ष नवीनचंद राय की सहायता से श्री शिवनारायण के सम्पादन में लाहौर से 'ब्रह्म-समाज' के नीति-प्रचारक भावनाओं को जनता में प्रसारित करने के लिए उर्दू और हिन्दी में एक साथ 'हिन्दू-बांधव' का प्रकाशन हुआ। शाहजहांपुर से 'आर्यभूषण', 'आर्यदर्पण' नामक पत्र के भूतपूर्व सम्पादक बख्तावर सिह ने 'हिन्दू-बाँधव' प्रकाशित किया। पं० मुकुंदराम शास्त्री ने १८७७ में मित्रविलास

१. काशी पत्रिका, २९ जुलाई, १८८१ ई०, पृ० ३५९

प्रेस लाहौर से 'मित्रविलास' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया था। प्रयाग से सदासुखलाल ने 'नागरीपत्रिका', 'धर्मपत्र और 'धर्म प्रकाश' नामक तीन पत्रों का एक प्रकाशन प्रारंभ किया। इसी वर्ष हिन्दी के प्रमुख निर्माता बालकृष्ण भट्ट द्वारा सम्पादित होकर 'हिन्दी प्रदीप' भी प्रयाग के विक्टोरिया प्रेस से हिन्दी की ठोस सेवा करने के लिए प्रकाशित हुआ 'मित्रविलास' पत्र के प्रयत्न से भारतेन्दु के निधन के उपरांत उनके प्रति श्रद्धांजलि रूप हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं में उनके नाम का संवत् चलाने का आंदोलन प्रारम्भ हुआ। भट्ट जी की विद्वता और लगन के कारण 'हिन्दी प्रदीप' को युग के प्रमुख साहित्यिकारों का सहयोग प्राप्त हुआ था। महाराणा सज्जन सिंह ने भट्ट जी के साहित्यिक प्रयत्नों से प्रभावित होकर 'हिंदी प्रदीप' को आर्थिक सहायता प्रदान की। 'हिंदी-प्रदीप' ने भारतेन्दु द्वारा प्रारम्भ की गयी साहित्यिक पत्रकारिता को पुष्ट और विकसित किया। इस पत्र के सम्पादन की नीति पूर्णतः स्वाधीन थी। १८७८ में कायस्थों का जातीय पत्र 'कायस्थ समाचार' श्री सच्चिदानंद सिंह ने प्रयाग से सम्पादित किया। इस पत्र के आधार पर 'हिन्दुस्तान रिव्यू' नाम का अंग्रेजी समाचार-पत्र भी निकाला गया। कलकत्ते से इसी बीच एक और महत्त्वपूर्ण पत्र 'भारत मित्र' का प्रकाशन हुआ। इसके प्रकाशन से हिन्दी में तेजस्वी पत्रों के प्रकाशन का आरंभ हुआ। 'भारत मित्र' के जन्मदाता थे श्री छोटूलाल और दुर्गाप्रसाद मिश्र। यह पत्र लगा-तार सत्तावन वर्षों तक हिन्दी की सेवा करता रहा। इस पत्र के प्रारंभिक अंकों के सम्पादक पंडित रुद्रदत्त शर्मा भी थे। यह पहले पाक्षिक था, बाद में दसवें अंक से साप्ताहिक कर दिया गया। वाणिज्य, राजनीति, देशनीति आदि विभिन्न विषयों के प्रमुख लेख उसमें प्रकाशित होते रहे। भारत मित्र के सम्पादक-मंडल में सर्वश्री मनोहरदास खन्ना, हनुमानप्रसाद, केदारनाथ, नित्यगोपाल मल्लिक आदि सामाजिक कार्यकर्ता भी थे। अमृतलाल चक्रवर्ती, राधाकृष्ण चतुर्वेदी, रामदास वर्मा, डा० एस०के० वर्मन, रुद्रदत्त शर्मा, प्यारेलाल, ब्रह्मानंद आदि हिन्दी के वरिष्ठ विद्वान् समय-समय पर इस पत्र के सम्पादक-रूप में सेवा करते रहे। इस पत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि सभी सम्पादकों ने अपनी सुदृढ़ सम्पादन-नीति के बल पर उसके विकास को किसी प्रकार से भी अवरुद्ध नहीं होने दिया। यह १९२१ से दैनिक पत्र के रूप में प्रकाशित होने लगा।

१८७९ में प० सदानंद मिश्र ने अपने प्रौढ़ सम्पादन में कलकत्ता से 'सार-सुधानिधि' नामक पत्र का प्रकाशन आरंभ किया। इस पत्र की भाषा-सामग्री, मुद्रण, कागज और सबसे अधिक सम्पादन उत्तम था। इसी वर्ष बनारस से 'काशी-

मंच' निकला। इसके सम्बन्ध में विशेष जानकारी का अभाव है। अनेक हिन्दी-पत्रों के जन्मदाता पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र ने १८८० में कलकत्ते से पुनः 'उचित वक्ता' नाम वाले समाचार-पत्र का प्रकाशन किया। वे सर्वथा स्वतंत्र नीति से इस पत्र का सम्पादन करते थे। इसी समय 'जैन-पत्रिका', 'धर्मनीति-तत्व' और क्षत्रिय-पत्रिका' नाम से तीन पत्र प्रकाशित हुए। १८८१ में लखनऊ से 'भारतदीपिका', पटना से अम्बिकाचरण घोष के सम्पादन में हिन्दी, बंगाली, गुजराती तीन भाषाओं में 'धर्म-सभा' तथा प्रयाग से जगन्नाथप्रसाद वैद्य के सम्पादन में 'आरोग्य-दर्पण' नाम के तीन सामयिक महत्व के मासिक-पत्र प्रकाशित हुए। इसी बीच चौधरी बदरी नारायण 'प्रेमघन' ने मिर्जापुर से 'आनंद कादंबिनी' संज्ञक साहित्यिक मासिक पत्रिका प्रकाशित की। इसमें सम्पादक द्वारा लिखित कविताओं की प्रचुरता होती थी। शायद इसीलिए सम्पादक को एक पत्र में भारतेन्दु ने लिखा था- "यह किताब नहीं जो इसमें इकराम फर्माया करते हैं, बल्कि अखबार है, जिसमें अनेक जन-लिखित लेख होना आवश्यक है और वह भी नहीं, सब एक तरह के लिक्खाड़ हों।[1]

१८८२ में अनेक साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई। इसी वर्ष प्रयाग से पं० देवकीनंदन तिवारी ने 'प्रयाग-समाचार' प्रकाशित किया। पं० प्रतापनारायण मिश्र जैसे विद्वान् उनके साथ थे। इस पत्र में सम्पादन की विशेष शैली का दर्शन नहीं होता, फिर भी भावाभिव्यक्ति के क्षेत्र में सम्पादक की विचारधारा स्वतंत्र कही जा सकती है। इसके सम्पादक स्वयं घूम-घूमकर पत्र को बेचते थे। बाद में, इस पत्र का प्रकाशन जगन्नाथप्रसाद शर्मा राजवैद्य करने लगे और दिनोंदिन इस पत्र का विकास होता गया। इसी समय अजमेर से मुन्नालाल के सम्पादन में 'देश-हितैषी' नामक मासिक पत्रिका प्रकाशित हुई। सरकारी दफ्तरों और अदालतों में हिंदी के प्रचारार्थ तथा देवनागरी लिपि के आंदोलन को ध्यान में रखकर मेरठ से 'देवनागरी प्रचारक' मासिक प्रकाशित किया गया। हिन्दी के प्रबल समर्थक पं० गौरीदत्त शर्मा इस पत्र के आदि सम्पादक थे।

गोस्वामी ज्वालादत्त प्रसाद ने इसी समय वृन्दावन से 'भारतेन्दु' मासिक पत्र प्रकाशित किया। यह पत्र कुछ ही वर्षों में बंद हो गया। कई वर्षों के बाद राधाचरण गोस्वामी ने पाक्षिक पत्र के रूप में 'भारतेन्दु' का पुनः प्रकाशन किया।

---

१. समाचार पत्रों का इतिहास : पं० अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी, पृ० १८४-८५

१८९१ से यह पत्र मासिक हुआ। १८९२ से यह लाहौर से प्रकाशित होने लगा। कुछ दिनों बाद यह पत्र बंद हो गया। १८९३ में दो साप्ताहिक पत्र निकले। दिल्ली से जयंतीप्रसाद शर्मा द्वारा सम्पादित होकर 'इन्द्रप्रस्थ प्रकाश' तथा काशी से बिहारी सिंह के सम्पादन में 'काशी समाचार' प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष बरेली से वंशीलाल के सम्पादन में 'सत्यप्रकाश' तथा रामदीन वर्मा द्वारा सम्पादित लखनऊ से 'दिनकर प्रकाश' दो मासिक पत्र भी निकले। कलकत्ता से देवीसहाय के सम्पादकत्व में 'धर्म दिवाकर' नामक मासिक निकला। इस पत्र के लेखकों में पं० गोविन्दनारायण मिश्र-जैसे प्रख्यात लेखक भी थे। इसी वर्ष प०प्रतापनारायण मिश्र द्वारा सम्पादित हिन्दी का विख्यात मासिक 'ब्राह्मण' भी प्रकाशित हुआ। इस पत्र का वार्षिक मूल्य केवल एक रुपया था। इसके दो सौ ग्राहक थे। १८८७ के बाद इस पत्र की दुःखद स्थिति को ध्यान में रखकर रामदहिन सिंह ने बाँकीपुर के 'खंगविलास' प्रेस से इसे प्रकाशित करना आरंभ कर दिया। पं० प्रतापनारायण मिश्र आजीवन इस पत्र का सम्पादन करते रहे। इसी समय हिंदी के कुछ ऐसे प्रमुख पत्र प्रकाशित हुए जो स्थायी महत्त्व के थे। वे पत्र थे—"हिन्दुस्तानी', 'धर्मोपदेश', 'भारत-हितैषिणी', 'विद्योदय', 'जंग विलास', 'सदाचार मार्तंड', 'कविकुलकंज दिवाकर', 'इदु', 'वैष्णव पत्रिका' 'हिन्दी समाचार', 'व्यापार बंधु' आदि। इन पत्रों के प्रकाशन-स्थल लखनऊ, बम्बई, काशी, बस्ती, जयपुर, बाँकीपुर, लाहौर आदि विभिन्न नगर थे। 'विद्योदय' संस्कृत की पत्रिका थी। भ्रमवश अनेक विद्वानों ने हिन्दी पत्रिकाओं में इसकी गणना कर ली है। मिर्जापुर से 'खिचरी समाचार' भी इसी वर्ष निकला। इसी बीच हिन्दी-पत्रकारिता के विकास का प्रमुख पत्र 'हिन्दोस्तान' का प्रकाशन कालाकाँकर नरेश राजा रामपाल सिंह द्वारा हआ। उस समय यह पत्र अँग्रेजी-हिंदी दो भाषाओं में निकलता था। कुछ दिनों तक इस पत्र का उर्दू-संस्करण भी निकला। जनवरी १८९१ से रविवासरीय सस्करण के रूप में इसका अंग्रेजी में भी प्रकाशन होने लगा। हिंदी सम्पादक के स्थान पर सदैव राजा रामपाल सिंह का ही नाम प्रकाशित होता था। इस पत्र के सहकारी सम्पादकों के रूप में समय-समय पप अमृतलाल चक्रवर्ती, मदनमोहन मालवीय, लालबहादुर, शशिभूषण, बालमुकुंद गुप्त और शीतलाप्रसाद उपाध्याय आदि ने भी कार्य किया। अनेक सम्पादकों द्वारा लिखित सम्पादकीय लेखों के कारण इसकी भाषा में स्थिरता नहीं आ सकी। इस पत्र की उपयोगी नीति स्पष्ट और समयानुकूल थी। अनेक वर्षो तक इस पत्र का प्रकाशन कालाकाँकर से होता रहा।

भागलपुर से १८८३ में 'वैष्णव पत्रिका' को 'पीयूष प्रवाह' नाम से पं० अम्बिकादत्त व्यास ने निकालना प्रारम्भ किया। उनकी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी से ओतप्रोत होता था। यद्यपि इस वर्ष अनेक पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन का विवरण मिलता है, तथापि 'चम्पारन हितकारी' और 'भारतजीवन' नामक दो साप्ताहिक पत्रों को ही स्थायी महत्त्व का माना जा सकता है।

१८८५ में लाला सीताराम के सम्पादन में कानपुर का प्रथम दैनिक पत्र 'भारतोदय' निकला। यह पत्र कुछ ही महीनों चलकर बन्द हो गया। इस वर्ष की प्रकाशित कुछ अन्य मासिक, पाक्षिक और साप्ताहिक पत्र-पत्रिकायें निम्नलिखित थीं :

मुरादाबाद से बनवारीलाल मिश्र द्वारा संपादित 'विद्याभास्कर', सनातन-धर्मोपदेशक सभा मुजफ्फरपुर से 'धर्मप्रचारक', पंडित दुर्गाप्रसाद द्वारा सम्पादित 'विद्याविलास' भागलपुर से बालगोविन्द के सम्पादकत्व में 'भारत-पंचामृत', लखनऊ से शिवदत्त मिश्र के सम्पादन में कविता-प्रधान मासिक 'काव्यामृतवर्षिणी' फर्रुखाबाद से पं० हरिप्रसाद शर्मा द्वारा प्रकाशित 'गोधर्म प्रकाश', बिठूर जिला कानपुर से गुरुबख्श सिंह द्वारा सम्पादित 'भारत-चन्द्रोदय' आदि मुख्य पत्र प्रकाशित हुए। पं० बलभद्रप्रसाद ने कविताप्रधान मासिक 'रसिकपंच' एवं लखनऊ से पं० लक्ष्मण प्रसाद ब्रह्मचारी ने 'सुख संवाद' प्रकाशित किया।

१८८७ में पाँच साप्ताहिक, एक पाक्षिक और चार मासिक पत्रों का प्रकाशन हुआ। इन समाचार-पत्रों में किसी को दीर्घ जीवन नहीं मिला। कुछ प्रमुख साहित्यिक पत्रों के नाम हैं—'आर्यावर्त', 'विक्टोरिया सेवक', 'शुभ चिन्तक', धर्मसभा अखबार' तथा 'भारत-भ्राता'। १८८८ में मथुरा से 'खत्री हितकारी' और 'खत्री अधिकारी' दो जातीय मासिक पत्र प्रकाशित हुए। मुरादाबाद से इसी समय 'सभापत्र' नामक मासिक निकला और प्रयाग से भीमसेन शर्मा के प्रबंधकत्व में बैरिस्टर रोशनलाल की पत्नी श्रीमती महादेवी द्वारा सम्पादित एक अन्य मासिक पत्रिका 'भारत जगिनी' प्रकाशित हुई। १८८९ में पाँच साप्ताहिक, दो पाक्षिक और पाँच मासिक समाचार पत्रों का प्रकाशन हुआ। इस वर्ष के प्रकाशित जातीय-मासिक पत्रों में 'कायस्थ पत्रिका', 'कायस्थ उपदेश', 'कायस्थ उपकारक', 'कान्य-कुब्ज हितकारी', 'जाट-समाचार', 'अग्रवाल उपकारक' आदि प्रमुख थे। इसी वर्ष मथुरा से 'ब्रज-विनोद' और आगरा से 'अद्‌भुत शतक' नामक दो काव्य प्रधान मासिक पत्रों का प्रकाशन हुआ। इस वर्ष काशी से कुल यशस्वी शास्त्री ने धर्मसुधा वर्षण' मासिक निकाला।

१८९० में नौ साप्ताहिक, तीन पाक्षिक और बीस मासिक पत्रों का प्रकाशन हुआ। इनमें से अधिकांश पत्रों का प्रकाशन धार्मिक, सुधारवादी, जातीय एवं सामाजिक सिद्धांतों की उद्देश्य-पूर्ति के लिए होता था। इसी वर्ष श्री कृष्णचन्द्र बनर्जी की व्यवस्था से कलकत्ते से 'हिन्दी बंगवासी' का प्रकाशन शुरू हुआ। इसके पूर्व हिन्दी में इस ढंग का एक भी अखबार नहीं था। इसका वार्षिक मूल्य दो रुपया था। इसके सम्पादक अमृतलाल चक्रवर्ती बंगाली होने पर भी हिन्दी-पत्रों का सम्पादन करते आ रहे थे। उत्तरप्रदेश और बिहार इसके पाठकों का गढ़ था। इस पत्र की ग्राहक संख्या दो हजार से ऊपर थी। उस समय 'हिन्दी बंगवासी' के सम्पादक थे पं० अमृतलाल चक्रवर्ती और उनके सहकारी थे बिहार के पं० मुनेश्वर मिश्र। उसके एक तीसरे सम्पादक पं० प्रभुदयाल भी थे।

पत्रकारिता के विकास के लिए भाषा में एक तरह की समानता भी अपेक्षित होती है। इस पत्र में इसका सर्वदा अभाव रहा, क्योंकि 'सेक्रेटरी' को 'सिकत्तर' 'मजिस्ट्रेट' को 'मजिस्टर' तथा 'वालेंटियर' को 'वल्लटेयर' आदि बनावटी प्रयोगों का खुलेआम व्यवहार किया जाता था। इसमें भाषांतरित सामग्री का आधिक्य होने पर भी सामयिक समाचार और सम्पादकीय टिप्पणियों में जान रहती थी।

१८९१ में ग्यारह मासिक पत्र प्रकाशित हुए। इनमें से अधिकांश पत्रों का सम्बन्ध बालकों, महिलाओं और शिक्षकों से था। १८९२ में कुल पन्द्रह पत्र निकले। इनमें से 'व्यापार हितैषी' का सम्पादन काशी से हनुमानप्रसाद तथा 'गोसेवक' का सम्पादन प्रयाग से जगतनारायण करते थे। ये दो पत्र साप्ताहिक थे। इसी वर्ष काशी के दो मासिक 'ब्राह्मण हितकारी' और 'सरस्वती प्रकाश' क्रमशः कृपाराम और बनवारी के सम्पादन में प्रकाशित हुए। 'ब्रजवासी' नामक पत्रिका का प्रकाशन आर० एल० वर्मन के यहाँ से होता था। 'जैन हितैषी', 'क्षतिय हितैषी' आदि साम्प्रदायिक और जातीय पत्र भी इसी समय निकाले गये। इंदौर से चौवालीस के बाद 'मालवा समाचार' का भी उदय हुआ।

१८९३ में कुल ग्यारह पत्र-पत्रिकायें निकलीं। चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमघन' द्वारा संपादित होकर मिर्जापुर से महत्त्वपूर्ण साहित्यिक पत्र 'नागरी-नीरद' प्रकाशित हुआ। इस वर्ष के अन्य प्रमुख मासिक पत्र थे :—'भारतप्रताप', 'सुधासागर', 'सत्यवक्ता' और 'साहित्य सुधा-निधि'। अंतिम पत्र को अत्यन्त महत्त्व का माना जा सकता है। इसके प्रकाशन का प्रारम्भ १ जून १८९३ से नारायण प्रेस, मुजफ्फरपुर से हुआ। इसके सम्पादक हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार देवकीनंदन

खत्री थे। शुरू से ही इसके सम्पादक-मण्डल में जगन्नाथदास 'रत्नाकर', कार्तिक प्रसाद खत्री, राधाकृष्णदास आदि प्रमुख साहित्यकारों का नाम छपता था। इसी समय अनेक साप्ताहिक और वार्षिक पत्र जातीय, सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं को लेकर आगे आये। इस वर्ष के मासिक पत्रों में 'रत्नाकर', 'सर्वहितैषी', 'दिनचर्या', 'हरिश्चन्द्र कौमुदी', 'सारंग-सरोज', 'न्यायपत्र' और 'नाट्य पत्र' आदि को प्रमुख माना जा सकता है। अंतिम दोनों पत्र प्रयाग की विद्यावर्धिनी सभा से प्रकाशित होते थे।

१८९५ में पाँच साप्ताहिक और ग्यारह मासिक पत्र निकले। इनमें से अधिकांश को साम्प्रदायिक अथवा जातीय कहा जा सकता है। खंगविलास प्रेस बाँकीपुर से प्रकाशित तथा अनेक नवीन विषयों से सम्पन्न 'विद्याविनोद' को इस वर्ष का महत्त्वपूर्ण मासिक पत्र कहा जा सकता है। स्वतंत्र साप्ताहिक पत्रों में जातीय भावनाओं को उद्घाटित करने वाली सामग्री का अभाव नहीं था। आधुनिक हिंदी-साहित्य को अधिक व्यापक बनाने में काशी नागरी प्रचारिणी सभा का योगदान सर्वाधिक महत्त्व का है। अब तक लगातार प्रकाशित होने वाली एकमात्र त्रैमासिक 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' है। इसके प्रारंभिक सम्पादकों में श्यामसुन्दर दास, सुधाकर द्विवेदी, कालिदास और रायकृष्ण दास थे। यह पत्रिका अपने प्रथम अंक के प्रकाशन के काल से ही हिंदी-पत्र-पत्रिकाओं को प्रेरणा देती रही।

१९०७ से १९२० तक यह पत्रिका मासिक रूप से प्रकाशित होती रही। उस समय इसके सम्पादक थे श्यामसुन्दर दास, रामचन्द शुक्ल, रामचन्द वर्मा और वेणीप्रसाद। १९२० में इसे पुनः त्रैमासिक कर इसका वार्षिक मूल्य तीन रुपया कर दिया गया। उस समय के सम्पादकों में गौरीशंकर हीराचंद ओझा बाबू श्यामसुन्दर दास, चन्दधर शर्मा गुलेरी और राय देवीप्रसाद पूर्ण के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी का सबसे पुराना साप्ताहिक पत्र 'वेंकटेश्वर समाचार' इसी वर्ष निकला। वेंकटेश्वर प्रेस द्वारा प्रकाशित इस साप्ताहिक के जन्मदाता संपादक थे रामदास वर्म्मन। समय-समय पर इसका सम्पादन अनेक हिन्दी विद्वानों ने किया। सम्पादन की एक नीति का अभाव इसके वैशिष्ट्य-बोध में बाधक रहा। लज्जाराम मेहता, अमृतलाल चक्रवर्ती, जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, हरिकृष्ण जौहर, रुद्रदत्त शर्मा आदि इसके प्रमुख सम्पादकों में थे। इस वर्ष दो मासिक पत्र और निकले- काशी से 'काशी-वैभव' और बम्बई से 'भारतहितैषी'। इसके अतिरिक्त इस बीच

प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक पत्रों में 'प्रताप' भी उल्लेखनीय है जो अलीगढ़ से ज्वालाप्रसाद द्वारा सम्पादित होकर निकलता था।

१८९७ में कानपुर से दो काव्य प्रधान मासिक 'रसिकमित्र' और 'रसिक वाटिका' का प्रकाशन हुआ। पहले के सम्बन्ध में विशेष जानकारी का अभाव है। दूसरे के सम्पादक थे ब्रजभूषण लाल गुप्त। इसका वार्षिक मूल्य एक रुपया तीन आने था। आर्यसमाजी और सनातनधर्मी पत्रिकाओं में 'सनातन-धर्मपताका', निगमागम चन्द्रिका', 'जैन भास्कर' आदि थे। इसी भाँति अनेक जातीय पत्र भी इस वर्ष निकले। 'कवि' और 'समालोचक' बलिया से प्रकाशित हुए। सार्वजनिक पत्रों में 'चन्द्रिका' और 'त्रिवेणी तरंग' दो मासिक पत्रों का उदय हुआ। 'चन्द्रिका' का सम्पादन हजारीलाल गुरुप्रकाश प्रेस लखनऊ से करते थे। प्रयाग की विद्यावर्धिनी धर्मसभा से' त्रिवेणी तरंग' निकलती थी। इसी वर्ष खंग विलास प्रेस बाँकीपुर से सकलनारायण शर्मा के सम्पादन में 'शिक्षा' नामक महत्त्वपूर्ण और दीर्घजीवी पत्र निकला। १८९९ में मुरादाबाद से 'तंत्र प्रभाकर' मासिक निकला। पहले इस पत्र के सम्पादक थे कन्हैयालाल और बाद में बलदेवप्रसाद मिश्र। अनेक वर्षों तक यह पत्र तांत्रिक साधना के उद्देश्यों के प्रचारार्थ निकलता रहा। इनके अतिरिक्त देवकीनंदन द्वारा सम्पादित साप्ताहिक 'प्रेम-पत्रिका' का नाम भी उल्लेखनीय है।

१८२६ से १८९९ तक प्रकाशित हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के विवेचनात्मक अध्ययन के बाद हिंदी-पत्रकारिता के अनेक महत्त्वपूर्ण आयाम स्पष्ट हो जाते हैं। इस शताब्दी में देश की जनता रूढ़ियों और अभावों से संघर्ष कर रही थी। पत्रकारिता के उद्देश्य को समझने की न उसके पास बुद्धि थी और न ही समय। जबरदस्ती इन पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक और प्रकाशक जनता के सिर के बोझ बने हुए थे। अब तक हिन्दी-जैसी व्यापक भारतीय भाषा में जितनी पत्र-पत्रिकायें संमुख आई हैं, उनमें जातीय, साम्प्रदायिक और गजट आदि का ही बाहुल्य है। अधिकांश ऐसे पत्र थे जो जनता के लिए उपयोगी नहीं थे। उस समय के समाचार-पत्रों के प्रकाशन और संचालन में आर्थिक तथा बौद्धिक त्याग की बड़ी आवश्यकता थी। हिन्दी-पत्रकारिता में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दिनोंदिन प्रगति करती गयी। हिंदी-पत्रकारिता का संघर्षशील अतीत अत्यन्त गौरवमय है। अतीत में किया गया संघर्ष भविष्य में फलीभूत होता है। खुले मन से इन पत्रिकाओं में साहित्यिक वाद-विवादों की चर्चा होती रहती थी। सयम के परिवर्तनों और जनतांत्रिक मान्यताओं ने समसामयिक पत्रकारिता से अनेक प्रकार के

परिवर्तनों की माँग की। भिन्न रुचिवाले लोक-तोष के लिए अनेक विषयों के पत्र अलग-अलग उद्देश्य से प्रकाशित किये गये। इन पत्रों में साहित्य, राजनीति, धर्म, देशी रजवाड़े, स्त्री, बाल, शोध-स्वास्थ्य, कला आदि अनेक विषयों से सम्बन्धित स्वतंत्र सामग्री प्रकाशित होती थी। इन पत्र-पत्रिकाओं में उस युग की विभिन्न मनोदशाओं और परिस्थितियों की सच्ची कहानी मुद्रित होती थी। राजनीतिक परिवर्तनों से पत्रकारिता निकट का सम्बन्ध है। इसी शताब्दी में जिन पत्र-पत्रिकाओ की नीति सुस्पष्ट और निर्भीक थी, उन्होंने दीर्घ जीवन प्राप्त किया। दलबंदी और संकीर्ण विचारधारा में बहक जाने वाली पत्र-पत्रिकाएँ कालधारा के भँवर में निमग्न हो गयीं। अलंकरण, मुद्रण तथा कागज आदि की दृष्टि से इनमें से अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ प्रारम्भ में छोटे-छोटे रद्दी कागजों पर लीथो या भद्दे टाइप में मुद्रित होती रहीं। उस समय जनता इन पत्र-पत्रिकाओं से विशेष रुचि नहीं रखती थी। रईस लोग पत्रों के ग्राहक हुआ करते थे। ये पत्र-पत्रिकाएं संख्या में पचास से लेकर पाँच सौ तक छपती थीं। उनके नियामक और संचालक हिंदी के प्रचारक लोग थे। उन्होंने उपेक्षा, घाटा और अवहेलना का सामना करते हुए अपनी पत्र-पत्रिकाओं को प्रकाशित और प्रचारित करने में कभी भी संकोच नहीं किया। समय के साथ मुद्रण आदि के क्षेत्र में ज्यों-ज्यों प्रगति होती गयी त्यों-त्यों इनका रूप भी संवरता गया। इस उन्नत पत्रकारिता के युग में उस समय की कठिनाइयों की कल्पना करना आसान बात नहीं।

हिन्दी-पत्रकारिता के अतीत की एक झाँकी प्रस्तुत करने के बाद जब बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की हिंदी-पत्रकारिता पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें उसकी आशातीत उन्नति दिखाई देती है। १९०० से लगातार प्रतिवर्ष दर्जनों पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित होती रहीं। इनमें से प्रमुख साहित्यिक पत्रों की विवेचना यहाँ की जा रही है।

इस युग की अनेक पत्रिकाओं को स्थायित्व नहीं मिला, फिर भी ऐतिहासिक दृष्टि से उनका अपना महत्त्व है। इसी वर्ष 'सरस्वती' का उदय हुआ। वह अपने महान् उद्देश्यों से प्रेरित होकर हिन्दी की आज तक अनवरत सेवा कर रही है। वास्तव में हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता का आरम्भ 'सरस्वती से ही होता है।

जनवरी १९०० के 'सरस्वती का प्रथम अंक अनेक विशेषताओं को लेकर हिन्दी में अवतीर्ण हुआ। इसकी सम्पादन-कला में नागरी प्राचारिणी सभा के संचालकों का विशिष्ट योग था। विषय-चयन एवं सामग्री-सम्पादन में 'सभा'

की कलम का उपयोग 'सरस्वती' के लिए किया गया था। उसके प्रथम अंक में उसके दिगंतव्यापी नीति की घोषणा की गयी। एक वर्ष तक वह इसी सम्पादक समिति के निर्देश पर निकलती रही। फिर वह आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पादन में निकली और हिन्दी की युगप्रवर्तक शीर्षस्थ पत्रिका बन गयी।

१९०० में पं० माधवप्रसाद मिश्र, देवकीनंदन खत्री ने दर्शन की पत्रिका 'सुदर्शन' को लहरी प्रेस, काशी से प्रकाशित किया। १९०१ में कुल नौ मासिक पत्र निकले। पं० चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' के सम्पादकत्व में जयपुर से प्रकाशित होने वाले 'समालोचक' की प्रसिद्धि उसकी आलोचनात्मक दृष्टि के नाते विशेष रूप से हुई। इसी वर्ष बालमुकुंद शर्मा ने काशी से 'मित्र' नामक मासिक निकाला। १९०२ में कोई उल्लेखनीय साहित्यिक पत्र नहीं प्रकाशित हुआ। १९०३ में कुल सात मासिक प्रकाशित हुए। 'लक्ष्मी' में लाला भगवानदीन ने वीर रस की उर्दू-शैली की कविता लिखना प्रारम्भ किया। १९०४ में कोई उल्लेख्य साहित्यिक पत्र नहीं दिखाई पड़ता। १९०५ में यही स्थिति रही। आरा की 'नागरी प्रचारिणी सभा ने १९०६ में 'साहित्यिक पत्रिका' का प्रकाशन किया। १९०७ का वर्ष पत्रकारिता के नये और प्रगतिशील प्रयोग की दृष्टि से अन्यतम कहा जा सकता है। इस वर्ष सोलह मासिक पत्रिकायें प्रकाशित हुई। 'अभ्युदय' और 'केसरी' जैसे राष्ट्रीय पत्रों के प्रकाशन के कारण हिन्दी के लिए यह वर्ष चिरस्मरणीय है। १९०९ में कुल सोलह मासिक पत्र प्रकाशित हुए। पं० पद्मसिंह शर्मा और नरदेव शास्त्री 'वेदतीर्थ' के संयुक्त सम्पादन में भाषा-परिष्कार और पुष्ट विचारों की दृष्टि से हिन्दी-पत्रिकाओं में सम्मानपूर्ण पद का अधिकारी 'भारतोदय' का प्रकाशन इसी वर्ष हुआ। १९१० में तीन साप्ताहिक और बारह मासिक पत्र प्रकाशित हुए। इसी समय कानपुर से प्रसिद्ध साप्ताहिक और राष्ट्रीय पत्र 'प्रताप' गणेशशंकर विद्यार्थी और उनके मित्रों के सहयोग से प्रकाशित हुआ। गणेशशंकर विद्यार्थी के अथक प्रयत्नों के परिणामस्वरूप 'प्रताप' कानपुर के समाचार-पत्रों के बीच 'नींव का पत्थर' बन गया। 'प्रताप' के माध्यम से विद्यार्थी जी ने नवयुवकों की चेतना को क्रांतिकारी मोड़ देने की कोशिश की। १९११ में कुल उन्नीस मासिक पत्र प्रकाशित हुए, किन्तु साहित्यिक दृष्टि से कम मासिक पत्रों को सफलता मिली। १९१२ में ग्यारह मासिक पत्र निकले। इसी समय गोरखपुर से त्रैमासिक 'साहित्य समालोचक' का प्रकाशन हुआ। दूसरा विशिष्ट मासिक आरा, शाहाबाद से पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा ने मराठी के मनोरंजन की अनुकृति पर 'हिन्दी मनोरंजन' निकाला।

१९१३ में दस जातीय पत्र प्रकाशित हुए। इसी वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से 'सम्मेलन पत्रिका' प्रकाशित हुई। 'सम्मेलन पत्रिका' आज तक अनवरत हिंदी की सेवा कर रही है। इसी वर्ष खण्डवा से कालूराम गंगराडे और माखनलाल चतुर्वेदी के सहसम्पादकत्व में 'प्रभा' का प्रकाशन हुआ। १९१४ में इकतीस मासिक पत्र एक साथ प्रकाशित हुए। परन्तु हिंदी साहित्य के विकास की दृष्टि से केवल दो पत्रों का विशेष महत्त्व है। इनका भी प्रकाशन-काल अत्यन्त कम था। मेरठ की नागरी प्रचारिणी सभा 'देवनागर' मासिक पत्र प्रकाशित करती थी और कलकत्ते से निहालचन्द्र बेरी द्वारा सम्पादित 'रत्नाकर' मासिक पत्र का प्रकाशन हुआ। इसी वर्ष ऋषिकुल-आश्रम हरिद्वार से 'ब्रह्मचारी' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन हुआ। १९१६ में कुल दस मासिक पत्र निकले। हिन्दी-पत्रकारिता में धार्मिक, जातीय और साम्प्रदायिक प्रवृतियाँ उत्तरोत्तर प्रवल पड़ती गयीं। १९१७ में भगवानदास ने हाथरस से 'भारत-बंधु' साप्ताहिक का प्रकाशन किया। १९१८ में काशी से 'सूर्य' नामक द्विदिवसीय पत्र का प्रकाशन हेरम्ब मिश्र ने किया। इसी वर्ष मुरादाबाद से प्रकाशित 'प्रतिभा' नामक पत्रिका का अपना एक विशिष्ट स्थान है। पं० ज्वालादत्त शर्मा इसका सम्पादन करते थे।

१९२० से हिन्दी पत्रकारिता-जगत् में दैनिक पत्रों के नवीन युग का श्री-गणेश हुआ। आठ दैनिक पत्र इस वर्ष प्रकाशित हुए काशी से निकलने वाला 'आज' हिंदी की उत्कृष्ट पत्रकारिता का प्रतीक था। इसी वर्ष स्वर्गीय राजेन्द्र प्रसाद ने 'देश' और माखनलाल चतुर्वेदी ने साप्ताहिक 'कर्मवीर' निकाला। १९२१ में कुल तेईस मासिक और ग्यारह साप्ताहिक पत्र निकले। इस वर्ष भी साहित्यिक उत्थान को प्रश्रय देने वाली एक उल्लेखनीय मासिक पत्रिका 'माधुरी' प्रकाशित हुई। 'माधुरी' का प्रकाशन नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से श्री विष्णुनारायण भार्गव ने किया। इस पत्रिका में विशिष्ट साहित्यकारों की कृतियों का प्रकाशन कर भार्गव जी ने हिंदी भाषा और साहित्य को बहुत समृद्ध किया और नवलकिशोर प्रेस को एक साहित्यिक तीर्थ-स्थल बना दिया। शिव-पूजन सहाय, वृन्दावनलाल वर्मा, निराला, इलाचंद जोशी, प्रेमचन्द, रूपनारायण पाण्डेय और अन्य दर्जनों साहित्यकारों ने इस प्रेस द्वारा अपने विशिष्ट ग्रंथों को प्रकाशित कराकर हिन्दी साहित्य में स्थान बना लिया। 'माधुरी' का आकार-प्रकार, अलंकरण, साज-सज्जा सब कुछ 'सरस्वती' की ही भांति का था। परन्तु भाषा की शुद्धता आदि की दृष्टि से 'सरस्वती' 'माधुरी' से बहुत आगे थी। इसका वार्षिक मूल्य साढ़े छः रुपया था और इसके सम्पादकों में प्रेमचन्द, दुलारेलाल

भार्गव, रूपनारायण पाण्डेय, शिवपूजन सहाय तथा कृष्णबिहारी मिश्र आदि का इसमें महत्त्वपूर्ण योग रहा। कुछ ही वर्षों में 'माधुरी' अत्यन्त लोकप्रिय पत्रिका हो गई। यह पत्रिका एक ओर तो नागरिकों का मनोरंजन करती थी और दूसरी ओर हिन्दी साहित्य को नया रूप देने में योग देती रही। 'माधुरी' राजनीतिक चक्करों में न पड़कर आशावादी दृष्टिकोण को लेकर साहित्य-सेवा करती रही। इसके सम्पादक-मंडल में शिवपूजन सहाय जैसे भाषा के सुधारक थे। रूपनारायण पाण्डेय की काव्यमयी स्वच्छंदता ने 'माधुरी' को पत्रकारिता के क्षेत्र में नवीन प्रेरणा दी। १९२२ में रामकृष्ण मिशन के तत्त्वावधान और स्वामी माधवानन्द के सम्पादकत्व में कलकत्ते से 'समन्वय' का प्रकाशन हुआ। यह मासिक पत्र था।

१९२३ में बहुत से मासिक पत्र निकले। इसी वर्ष कलकत्ते से 'मतवाला' जैसे साहित्यिक व्यंग्य-प्रधान साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन हुआ। 'मतवाला' के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन आगे के अध्यायों में किया जायेगा।

१९२५ से १९३० के बीच प्रकाशित मासिक साहित्यिक पत्रों की तालिका अधोलिखित रूप में अवलोकनीय है :—

पत्रिका	सम्पादक	प्रकाशन-स्थान	वर्ष, अक, सन्
अभय	हरिनारायण, विश्नाथलाल	बनारस	वर्ष १ सं० जनवरी––जून तक १९३० ई०
आर्य-जगत्	खुशहालचन्द खुरसन्द	लाहौर	भाग ३, अंक १९, २०-२९ अक्तू०-नव०, २६ विशेषांक
आलोक	आयुर्वेदाचार्य कविरत्न पं० कालीप्रसाद खत्री	प्रयाग	वर्ष १, अंक २, चैत्र-आषाढ़ १९८३ चैत्र १९८४ संवत्
आशा	सुधाकर शर्मा	बरेली	वर्ष १, अंक २, मार्च, मई, जुलाई १९२७ ई०
कविचंद्रोदय	हंसदास शास्त्री	बाराबंकी	कला १, किरण ११ जून से २८ फरवरी, १९२६ ई०
कल्पवृक्ष	दुर्गाशंकर नागर	उज्जैन	वर्ष १, २, ४, ७–१२, सित अक्तूबर, १९३०, मार्च, अगस्त, १९३१ ई०

पत्रिका	सम्पादक	प्रकाशन-स्थान	वर्ष, अंक, सन्
कल्याण	हनुमानप्रसाद पोद्दार	बम्बई	भाग१, सं० १-१२ आषाढ़ सं० १९८३ से १९८४सं०
कादम्बरी	रामज्ञा द्विवेदी 'समीर'	कानपुर	अंक १, भाग १, ४, संवत् १०८३
किसान	सुखसम्पत्तिराय भंडारी	इन्दौर	खण्ड १, अंक १-६ जून, नवम्बर, सन् १९२८ ई०
गंगा	रामगोविन्द त्रिवेदी	भागलपुर	वर्ष १, ६ नवम्बर, १९३० अप्रैल, सन् १९३१ ई०
देवनागर	यशोदानंदन अखौरी	कलकत्ता	वर्ष १, अंक १-१२, कलि अब्द, ५००९ मैखमीन
नवयुग	सत्यदेव विद्यालंकार	कलकत्ता	वर्ष १, सं० ३-८, नवम्बर सन् १९२८, मार्च १९२९ ई०।
नारायण	नरोत्तम व्यास	कलकत्ता	दर्शन १ पर ४ अगहन १९८३ सं०
पूर्णेंदु	रमाकान्त त्रिपाठी	प्रतापगढ़	भाग १, सं० १-२, सं० ५, संवत् १९८३-८४।
प्रेम	आसूदापन्त टेकचन्द	वृन्दावन	वर्ष १, सं० १, भाग २, अंक २, वर्ष संख्या ३ सित० से नव० १९२६ ई०
महारथी मासिक	रामचन्द वर्मा	दिल्ली	वर्ष १, भाग १, सं० ७से९, अप्रैल-जून, सन् १९२६
युवक मासिक	रामबृक्ष बेनीपुरी	पटना	वर्ष १, अंक १ से १२, जन० से दिस० १९२९, वर्ष २, अंक १-२ व ६, सन्१९३० ई०
वनलता मासिक	गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'	प्रयाग	वर्ष १, अंक १ से ३, जन० फरवरी, मार्च, सन १९२९ ई०

पत्रिका	सम्पादक	प्रकाशन-स्थान	वर्ष, अंक, सन्
विशाल भारत	बनारसी दास चतुर्वेदी	कलकत्ता	वर्ष १, अंक १, जनवरी से जून, सन् १९२८ ई० तक
वीणा मासिक	अंबिका प्रसाद त्रिपाठी	इन्दौर	वर्ष १, भाग १, अंक १ से ५, विजयादशमी से माघ सं १९८४ विक्रमी
शारदा त्रैमासिक	द्वारकाप्रसाद मिश्र	जबलपुर	वर्ष १, अंक १-४, अप्रैल १९२४ से मार्च १९२५
संदेश त्रैमासिक	रामजीवन शर्मा	बम्बई	वर्ष १, अंक १ से ४, सित० दिस०, सन् १९२९ ई०
सम्मेलन पत्रिका त्रैमासिक	डॉ० धीरेन्द्र वर्मा	प्रयाग	वर्ष १, अंक १ से ४ माघ संवत १९८५ वि० कार्तिक १९८६ वि०
सरोज	नवजादिकलाल श्रीवास्तव	कलकत्ता	वर्ष १, अंक ८ से १२ संवत १९८५–८६ वि० (पौष–बैशाख) वर्ष १, अंक १ से ६, ज्येष्ठ–कार्तिक सं० १९८५ वि०
सुकवि मासिक	सनेही	कानपुर	वर्ष १, अंक ५–६ अगस्त–सितम्बर, १९२८ ई०
सुधा मासिक	दुलारेलाल भार्गव	लखनऊ	वर्ष १, खण्ड १, अंक १–६ अगस्त–जनवरी, १९२७—१९२८ ई०
हंस मासिक	बाबू प्रेमचन्द	बनारस	वर्ष १, अंक १—६ मार्च नवम्बर, १९३० ई०

....

'उदंत मार्तण्ड' से प्रकाशन-काल से लेकर १९३० तक के मध्य हिन्दी पत्रकारिता–साहित्य को न जाने कितने घात-प्रतिघात सहने पड़े। इन पुरानी पत्रिकाओं की परम्परा ने भारत की राष्ट्रीय पत्रकारिता के स्वरूप को निखारने में

महत्त्वपूर्ण योग दिया। इसलिए आधुनिक पत्रकारिता के स्वरूप-बोध के लिए विगत युग की इन पत्र-पत्रिकाओं का अनुशीलन-अवलोकन बहुत आवश्यक हो जाता है। यह खेद की बात है कि पहले के सम्पादकों और प्रकाशकों ने जितना त्याग और बलिदान किया है, उसे आज के हिन्दी-पत्रकारों ने विस्मृत कर दिया है।

निराला का पत्रकार-व्यक्तित्व

व्यक्तित्व, व्यक्ति की वह विशेषता है जो उसे अन्य व्यक्तियों से अलग करती हुई उसके निजत्व के स्वरूप का निर्धारण करती है। व्यक्तित्व का निर्माण व्यक्ति के संस्कार, समाज, वातावरण और शिक्षा-संस्कृति के माध्यम से होता है, किन्तु इस निर्माण में व्यक्ति का जितना हाथ रहता है उतना किसी अन्य का नहीं। इस प्रकार व्यक्तित्व, व्यक्ति का स्वयं उपार्जित तत्त्व है, उसके अस्तित्व के समस्त सम्बन्धों और प्रभावों की समष्टि है।[१] इस निर्माण के शारीरिक तथा मानसिक दो मूल कारण होते हैं। इन्हीं कारणों से मनुष्य प्रत्येक क्षण अपना निर्माण करता हुआ अनवरत प्रवाह से आगे बढ़ता जाता है। व्यक्तित्व के निर्माण के लिए यह जानना भी आवश्यक है कि शरीर, समाज और वातावरण किन प्रभावों से प्रभावित होता है।

पत्रकारी व्यक्तित्व के लिए कुछ प्रवृत्तियाँ और विशेषताएँ अनिवार्य होती हैं जो किसी-किसी को ही प्राप्त होती हैं। 'जिसे पत्थरों में कहानी और झर-झर करनेवाले झरनों में संवाद दिखाई देता हो, जिसकी कल्पना अन्तरिक्ष पर विश्व की गति की प्रतिच्छाया देखने में समर्थ होती हो और जो अपनी अनुभूति को सरस, सजीव शब्दों में अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता हो, वही पत्रकार हो सकता है'।[२] पत्रकार वही हो सकता है जो संसार का नेत्र और कान हो सके, जो सबके लिए सुन सके और देख सके, जीवन को प्रभावित करनेवाली दिन-प्रतिदिन की घटनाओं की दौड़ में जो उसके साथ रह सके तथा देश की जनता के हृदय और मन को आन्दोलित कर सके और सब भावों को प्रतिबिम्बित करने के लिए स्वयं दर्पण बन सके। ऐसा पत्रकार चाहे उसका स्थान अपनी जाति के लोगों में कितना भी अस्तित्वहीन ही क्यों न हो, अपने कर्तव्य में सन्तोष का

---

१. महाप्राण निराला : गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ० २८३

२. पत्र और पत्रकार : कमलापति त्रिपाठी, पृ० १४६

अनुभव करता है । हम यह कह सकते हैं कि सफल पत्रकार होने के लिए नैसर्गिक गुण की आवश्यकता होती है । ऐसे लोगों का हृदय अनायास अपने ढंग से कुछ भेंट चढ़ाने के लिए किसी अन्तःप्रेरणा से उद्वेलित हो उठता है । जो प्रकृति द्वारा दी गयी शक्ति का अधिकारी होगा उसे आगे बढ़ने का अवसर पंता नहीं कहाँ से मिल जाता है । जो इस नैसर्गिक गुण से रहित होगा, वह मिले हुए अवसर का भी उपयोग न कर सकेगा ।

पत्रकार का क्षेत्र बड़ा व्यापक है । पत्रकार के अन्दर गिनती उन सभी व्यक्तियों की होती है जो संवाददाता, विशेष संवाददाता, सम्पादक और सहायक सम्पादक, अग्रलेखों के लेखक तथा विशेष विषयों के लेखक आदि होते हैं । पत्रकार के लिए विस्तृत ज्ञान तथा उर्वर मस्तिष्क की आवश्यकता है । पत्रकार-जीवन अपनानेवालों के लिए पुष्ट शरीर और उत्तम स्वास्थ्य की आवश्यकता है । थोड़े से श्रम से जो थक जाता हो, काम के थोड़े बोझ से जिसके सिर में शीघ्र ही ठनक पैदा हो जाती हो, वह कभी सफल पत्रकार नहीं बन सकता । स्वास्थ्य की उत्तमता तो हमेशा और हर कार्य के लिए वांछनीय है, पर एक पत्रकार के लिए शक्ति और अध्यवसाय की जितनी आवश्यकता होती है उतनी शायद और किसी को नही । पत्रकार के लिए कोई नियत घण्टे नहीं होते । उसे बरसात की अँधेरी रात में तथा कड़ाके की सर्दी में काम पर डटने को बाध्य होना पड़ता है। इस तरह एक पत्रकार में इन गुणों का होना आवश्यक है ।

निराला का जीवन संघर्षों तथा विपत्तियों से युक्त रहा, लेकिन उनके अन्दर अदम्य साहस तथा अपराजेय पौरुष का समावेश था, जिसके कारण वे किसी भी परिस्थिति से निपटने के लिए तैयार रहने थे । इमके साथ ही उनका मस्तिष्क ज्ञान का एक अखण्ड भंडार था । उनका शरीर भी पुष्ट तथा स्वस्थ था, जो एक पत्रकार के लिए एक अनिवार्य शर्त है । इस तरह पत्रकार-सम्बन्धी समस्त गुण निरालाजी के व्यक्तित्व में पाये जाते हैं । अतः निरालाजी एक सफल पत्रकार के रूप में हमारे सामने उभर कर आते हैं । निराला जी सम्पादन-सम्बन्धी सम्पूर्ण कला से अवगत थे । 'मतवाला' का सम्पादन करते हुए वे मुंशी-नवजादिकलाल, बाबू शिवपूजनसहाय तथा बाबू महादेवप्रसाद सेठ की अनुपस्थिति में उनका भी कार्य सँभालते थे । यह बात इस संस्मरण से स्पष्ट होती है । इलाचन्द्र जोशी ने लिखा है– "एक बार जब मैं 'मतवाला' आफिस में गया, तब देखा, वहाँ सन्नाट था । पूछने पर पता चला कि बस इस समय सिर्फ निरालाजी प्रेस में हैं । मैंने उनके पास खबर भेजी । वे बाहर आए । शिष्टाचार के उपरान्त

हम दोनों एक चौकी पर बैठ गये। निरालाजी ने कहा कि मुंशी जी घर गये हैं और महादेव बाबू भी मिर्जापुर चले गये हैं, इसलिए 'मतवाला' का सारा कार्य-भार मुझी पर आ पड़ा है।'[1]

पत्रकारिता के क्षेत्र में निरालाजी का योगदान सराहनीय है। उन्होंने 'समन्वय' 'मतवाला', 'सुधा', 'कला', 'रँगीला', 'सरोज' एवं 'मौजी' पत्रों का सम्पादन एवं संचालन कर अपनी सम्पादन-कला का प्रमाण प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही साथ अपने व्यक्तित्व एवं साहित्य के अध्ययन के लिए कुछ मूलभूत सामग्री भी प्रस्तुत की है। पत्रकारिता के क्षेत्र में निराला का प्रवेश सकारण है। उनकी कुछ आरम्भिक रचनाएँ सम्पादकों द्वारा अस्वीकृत कर दी गयी थीं। चूँकि 'निराला' के भावगत और शिल्पगत कतिपय नये प्रयोग उस समय तक प्रतिष्ठित नहीं हो पाये थे, इसलिए उन्हें उपेक्षित दृष्टि से देखा जाता था। निराला इससे दुःखी भी कम नहीं हुए।

उनकी प्रथम रचना 'जुही की कली' (१९१६) मुक्त छन्द के क्षेत्र में नवीन प्रयोग के कारण 'सरस्वती' से जब वापस कर दी गयी तो कवि के हृदय पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। इस भाव को व्यक्त करने वाली 'सरोज-स्मृति' की ये पंक्तियाँ इसका प्रमाण प्रस्तुत करती हैं :

कवि जीवन में व्यर्थ ही व्यस्त
लिखता अबाध गति मुक्त छन्द
पर सम्पादकगण निरानन्द
वापस कर देते पढ़ सत्वर
दे एक पंक्ति दो में उत्तर
लौटी रचना लेकर उदास
ताकता हुआ मैं दिशाकाश।[2]

इसके अतिरिक्त, कुछ विशिष्ट पत्र निराला के विरुद्ध जो 'एकतरफा डिक्री' दे रहे थे, उससे निराला को बड़ी पीड़ा पहुँची थी। 'विशाल भारत'[3] में निराला के एक निबन्ध ('वर्तमान धर्म', जो 'भारत' १९३१ ई० में प्रकाशित हुआ था)

---

१. निराला अभिनंदन ग्रथ : बरुआजी, पृ० ४३
२. अपरा : निराला, पृ० १७३
३. विशाल भारत, कार्तिक, १९३२

को 'साहित्यिक सन्निपात' का शीर्षक देकर, उन पर जिस तरह से दुर्भावनापूर्ण आक्षेप किया, उसके स्पष्टीकरण को न प्रकाशित करके उन्हें निरुत्तर करने का जो षड्यन्त्र रचा गया था[1] और इन पत्रों की व्यूह-रचना के माध्यम से उनके ऊपर जो प्रहार किये जा रहे थे, उन्हीं प्रतिक्रियाओं से प्रेरित होकर आत्म-रक्षा के लिए पत्रकारिता का आश्रय ग्रहण करना निरालाजी के लिए अनिवार्य भी हो गया था।

वस्तुतः उस युग में पत्रकारिता ही किसी बात को व्यक्त करने का प्रमुख माध्यम थी। सम्पादकगण अपनी इच्छानुसार ही साहित्यकारों को प्रतिष्ठित अथवा चयन करते थे। निराला को भी बाबू महादेवप्रसाद सेठ ने अपनी इच्छानुसार ही चयन किया था।

तात्पर्य यह कि पत्रकारिता निराला के लिए भी एक मूलभूत आवश्यकता थी। उन्हें स्वयं को प्रतिष्ठित करने के लिए इस क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ा था। इसके अतिरिक्त निराला के पत्र-सम्पादन के पीछे उनकी कुछ मनोग्रंथियाँ भी कार्य कर रही थीं। वे चूँकि प्रारम्भ से ही प्रकाशन से वंचित थे, इसलिए इस कमी की भी पूर्ति करने के लिए तथा प्रतिस्पर्द्धा की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने पत्रकारिता-जगत् में प्रवेश किया। निराला की पत्रकारिता की पृष्ठभूमि में उनकी आर्थिक विवशता भी एक कारण थी। अपनी बेकारी एवं निर्धनता से बाध्य होकर उन्होंने 'समन्वय', 'सुधा' आदि पत्रों का सम्पादन किया था। उपर्युक्त तथ्यों से यह प्रकट हो जाता है कि अपनी मानसिक प्रतिक्रिया, आत्मविज्ञप्ति की भावना और आर्थिक विवशता—इन तीन कारणों से निराला पत्रकार बने। सम्पादन निराला का उद्देश्य भी था और मजबूरी भी थी। अतः यह कहना ठीक नहीं है कि अन्य :प्रेरणा से प्रेरित होकर वे पत्रकार नहीं बने थे।'[2]

निराला-साहित्य के सम्यक् अध्ययन लिए इसीलिए उनकी पत्रकारिता का अध्ययन करना एक तरह से आवश्यक है, क्योंकि इसके द्वारा उनके व्यवितत्व-विकास की प्रक्रिया और उनके साहित्य की क्रमबद्ध साधना पर दृष्टिपात किया जा सकता है।

---

१. 'साहित्यिकों तथा साहित्य-प्रेमियों से निवेदन' : निराला, सुधा, दिसम्बर, १९३२

२. 'युयुत्सा', : डॉ० कृष्णबिहारी मिश्र पृ० १०४, सितम्बर १९६८

निराला द्वारा पहला सम्पादित पत्र है – 'समन्वय', जो सौर आषाढ़ १९७९ (सन् १९२२ ई०) कलकत्ता से प्रकाशित होता था। यह एक दार्शनिक पत्र था। इसमें मुख्य रूप से धार्मिक एवं सामाजिक विषयों से सम्बन्ध रखने वाली रचनाएँ निकलती थीं। स्वामी माधवानन्द इस पत्र के प्रधान सम्पादक थे और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' सहायक। यों तो कार्य की दृष्टि से मुख्य सम्पादक वे ही थे और 'एक दार्शनिक' नाम से इसके नियमित लेखक भी थे, किन्तु प्रमुख सम्पादक के रूप में नाम छपता था स्वामी माधवानंदजी का ही। निराला के कथनानुसार माधवानन्द जी एक विद्वान महात्मा थे। उनकी सहायता के लिए रामकृष्ण आश्रम तथा अद्वैत आश्रम के अनेक संन्यासी नियुक्त किये गये थे। निराला वैदान्तिक रूप में अनेक संन्यासियों के साथ प्रेस-भवन में रहते थे। 'समन्वय' के लिए रचनाएँ इकट्ठा करना, मुद्रण-कार्य देखना और 'पुस्तक-परिचय' स्तम्भ तैयार करना निराला का ही कार्य था।

इस मासिक पत्र के सम्पादन-संचालन में निराला बड़ी निष्ठापूर्वक योग देते रहे। इसका कारण यह था कि इस पत्र में उनका प्रवेश युग-गुरु आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की संस्तुति के आधार पर हुआ था। इसके पहले शैक्षिक अभाव के कारण वे यह अवसर प्राप्त नहीं कर पाये थे। अपनी निष्ठा तथा कार्य निपुणता से उन्होंने यह प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। आचार्य शिवपूजनसहाय के शब्दों में उन्हें द्विवेदी जी का 'परखा हुआ हीरा'[1] कहा जाता था। 'समम्वय के अंकों में निराला के बहुत महत्त्वपूर्ण निबन्ध प्रकाशित हुए थे, जैसे, 'जातीय जीवन और श्रीरामकृष्ण' (सौर चैत्र १९८०)। उस निबन्ध का आज तक संकलन नहीं हो पाया। इसके अतिरिक्त 'हिन्दी में सांकेतिक लेखन' (सौर आषाढ़ १९७९), 'बँगला-हिन्दी-भाषा के पारस्परिक उपयोग' (सौर कार्तिक १९७९) विषय पर उनकी टिप्पणियाँ, 'रामकृष्ण-वचनामृत' का अनुवाद तथा 'चयन' आदि में प्रकाशित उनके अनेक निबन्ध भी अत्यन्त उपयोगी हैं।

स्मरणीय है कि सांकेतिक लेखक के रूप में निराला ने यहीं एक नयी सूत्र-शैली की खोज की थी जो कूटार्थों, रहस्य-प्रतीकों, मिथकों और प्राचीन तत्त्वों के गूढ़ार्थ से सम्पन्न थी। इसका प्रथम प्रयोग निराला ने अपने 'वर्तमान धर्म शीर्षक निबन्ध में किया था, किन्तु वह निबन्ध भयंकर वाद-विवाद का कारण बना। निराला लगभग ढाई वर्षों तक इस पत्र का सम्पादन करते रहे। दुर्भाग्यवश

१. वे दिन वे लोग : शिवपूजनसहाय, पृ० ४३

'समन्वय'-जैसा पत्र इसके बाद प्रकाशित न हो पाया। लगातार घाटा सहते रहने के कारण उसके प्रकाशन को बन्द कर देना पड़ा।

'समन्वय' जब उद्‌बोधन कार्यालय, बाग बाजार से हटकर सुप्रसिद्ध लेखक पं० बालकृष्ण भट्ट के नाम पर स्थापित 'बालकृष्ण प्रेस' २३, शंकर घोष लेन (मालिक महादेव सेठ) से छपने लगा तो सेठजी के आग्रह पर निराला 'समन्वय' छोड़कर 'मतवाला' नामक नवीन पत्र की स्थापना एवं व्यवस्था में जुट गये। इसलिए उनके 'मतवाला' के सम्पादन का भी अध्ययन और मनन करने योग्य है। इसका विस्तृत अध्ययन 'मतवाला' नामक अध्याय के अन्तर्गत आगे किया जायेगा।

निराला द्वारा एक और सम्पादित महत्त्वपूर्ण पत्र है – 'रँगीला'। यह रामलाल गर्ग और कुछ कलकतिया मित्रों के सहयोग से प्रकाशित हुआ था। नटनागर के चित्र से युक्त इसका मोटो था :

'पुरुष प्रकृति तम, ज्योति दिवस, निशि कल्प तल्प पर
एक रँगीला रूप खिला सब विश्व चराचर।'

इसका प्रवेशांक १९३२ में प्रकाशित हुआ था। मुख पृष्ठ पर प्रसादजी का 'बीती विभावरी' गीत सुशोभित होता था। पत्र का मूल्य १ आना वहीं अंकित होता था। इस पत्र-प्रकाशन के पीछे 'मतवाला' की विफलता तथा उस समय की संक्षोभ की प्रतिक्रिया रही होगी। इस पत्र का विस्तृत विवरण 'रँगीला' नामक अध्याय में प्राप्य है।

इसी कालावधि में, अपने लखनऊ-प्रवास के दौरान निराला ने 'सुधा' में वैतनिक कर्मचारी के रूप में कार्य किया। इस पत्र की सम्पादकीय टिप्पणियाँ और स्तम्भ-विचार अत्यन्त सराहनीय हैं। 'सुधा' अपने युग का प्रतिनिधि साहित्यिक पत्र रहा है, इसलिए इसके सम्पादन-गौरव का महत्त्व प्राप्त करना 'निराला' के लिए स्वाभाविक था। सम्पादक-रूप में उनका नाम भले ही न छपता रहा हो। 'सुधा' के 'सम्पादकीय' निराला की तत्कालीन मनोभूमि को जानने के लिए बहुत उपयोगी हैं। अब तक के 'आघातों-प्रतिघातों एवं जीवन-संघर्ष के कारण वे व्यवस्था के विपरीत हो गये थे। उनकी सहज मनःस्थिति दिन-प्रतिदिन नष्ट होती जा रही थी, जिसका आभास 'सुधा' की टिप्पणियों से मिल जाता है।

इन पत्रों के द्वारा निरालाजी की तत्कालीन संचेतना का साक्षात्कार किया जा सकता है। अन्य सम्पादित पत्रों में 'सरोज',[१] 'मौजी'[२] एवं 'कला'[३] के उल्लेख मिलते हैं। उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि निराला 'समन्वय' में वैदान्तिक 'मतवाला' में युगान्तरकारी तथा सृजनशील साहित्यकार के रूप में अपना योगदान देते दिखाई देते हैं। रँगीला' में वे कलमनवीस हो जाते हैं और 'सुधा' में मूर्ति-भंजक के रूप में दिखायी देते हैं।' कलकत्ता-प्रवास के प्रारम्भिक पाँच वर्ष निराला ने पत्रकार के रूप में बिताये हैं। हिन्दी का एक पत्रकार किन दारुण परिस्थितियों के बीच जीवन-यापन करता है, यह अहिन्दी प्रांतों की एक करुण कहानी है। 'मतवाला' की व्यापक लोकप्रियता और निराला के कविरूप की जय जयकार के बावजूद भी हिन्दी-साहित्यकारों ने निराला को भूखे पेट रखा। निराला के अतिरिक्त ऐसा कौन साहित्यकार इस देश में आया है जो भूख की मार को हँसते हुए झेल गया हो ? साहित्य का सृजन निश्चिंतता की अपेक्षा नहीं रखता। भारतीय जानता हजारों सालों की गुलामी के नाग-पाश में बँधी रहकर टूटी कमर और उलझी हुई अँतड़ियों से आज जीवित है। ऐसी दशा में जनता के प्रतिनिधि साहित्यकार कैसे निश्चिंत और तृप्त हो सकते थे ?

हिन्दी के ऐसे ही पत्रकार थे निराला। इसलिए यह जरूरी था कि वे भूखे पेट रहें। सेठ महादेवप्रसाद की कृपा उन्हें सदा के लिए निश्चिन्त बना भी नहीं सकती थी। उन्होंने जब अपना सिर हिन्दी की ओखली में दिया था और अपने पैर हिन्दी-साहित्य की तपस्या के दलदल में उलझा लिये थे तब किसी भी हालत में यह सम्भव नहीं था कि वे पैसे की समस्या को सुलझा लेते। हिन्दी की तपस्या और पैसे की निर्विघ्न प्राप्ति जैसे हिन्दी साहित्यकार की दो प्रेयसियाँ हों। हिन्दी साहित्यकार तपस्या से विवाह कर लेता है, लेकिन वह पैसे की निर्विघ्न-प्राप्ति

---

१. प्राप्त तथ्यों के अनुसार यह भूतनाथ तेल-वालों का प्रस्तावित पत्र था। इसका मोटो था :

'काव्यामोदी मधुपमय सरस तरंगित ओज,
साहित्यामृत भरित यह सुरभित सुरुचि सरोज।'

इसे निराला रचित कहा गया है। विशेष विवरण अप्राप्य है।

२. 'मौजी' का नामोल्लेख प्रामाणिक तथ्यों के अभाव में संदिग्ध-सा है।

३. 'कला' (सम्पादक कमलाशंकर सिंह) इसको यत्र-तत्र निराला-सम्पादित कहा गया है।

की प्रेयसी की विरह-वेदना में तिल-तिल जलकर मरने को अपना सौभाग्य मानता रहा है।

पत्रकारिता के क्षेत्र में निराला का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। अंकों की सम्यक् सज्जा के लिए वे लेखन में कितने सक्रिय थे, सैद्धान्तिक संग्रह के लिए वे किस प्रकार तैयार रहते थे, अनुवाद के माध्यम से वे किस प्रकार साहित्य को समृद्ध बनाने में लगे रहते थे तथा सम्पादन-कार्य में कितने निपुण, निष्ठावान् और विचार-स्वातंत्र्य-सम्पन्न थे, इन सबके प्रमाण उपर्युक्त पत्रों के आधार पर दिये जा सकते हैं। वस्तुतः निराला द्वारा सम्पादित ये विभिन्न पत्र उनकी साहित्य-साधना एवं मनोविकास के अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व के हैं।

निराला-द्वारा संपादित प्रथम पत्र : 'समन्वय'

निराला जीवनपर्यन्त दुःख से जूझते रहे। पिता और पत्नी की मृत्यु के बाद निराला ने महिषादल जाकर नौकरी कर ली। राज-काज से प्रायः निराला को कलकत्ता आना-जाना पड़ता था। धीरे-धीरे उन्हें कलकत्ते के लोग भी मानने जानने लगे। उनकी बँगला-कविताओं की तारीफ महिषादल से कलकत्ते तक में समान रूप से होने लगी थी। उनकी 'जूही की कली' की धाक सन् '१६ से ही जम चुकी थी। जीवन की पचीसी में प्रवेश करते ही वे सिद्धहस्त कवि बन गये थे। नौकरी से मन ऊबने लगा था। फलतः उन्होंने मन बहलाने के लिए अध्ययन मनन का सहारा लिया। इसलिए वे घर-आफिस सभी जगह कुछ न कुछ पढ़ते–सोचते रहते थे।

माँ-बाप की मृत्यु के आघात तथा पत्नी के अप्रत्याशित अंत को निराला के दार्शनिक हृदय ने सहन कर लिया, किन्तु उनके जीवन में इससे एक प्रकार की अन्यमनस्कता छा गयी। नौकरी छोड़ने की बात सोचते ही बच्चों की समस्या सामने आ खड़ी होती थी और निराला चुपचाप अपने काम में जुट जाते थे। लोगों ने उनकी इस भाव-मुद्रा की सूचना वहाँ के अधिकारियों तथा राजा को भी दी जिसके फलस्वरूप निराला को लेकर एक विवाद चल पड़ा। इससे क्षुब्ध होकर सन् '२० में निराला ने वहाँ से इस्तीफा दे दिया और घर चले आये। वहाँ से आने पर हिन्दी-प्रांत ने उनका स्वागत नहीं किया। उनकी परिस्थितियाँ दिन पर दिन जटिल होती गयीं। इस प्रकार निराला को एक दुर्निवार संघर्ष करना पड़ा। इसी समय उन्होंने अपनी प्रथम प्रौढ़ रचना 'जूही की कली' 'सरस्वती' में छपने के लिए भेजी, जो अस्वीकृत होकर लौट आयी, जिसे लक्ष्य कर उन्होंने लिखा :

तोड़ो, तोड़ो कारा
पत्थर की, निकले फिर, गंगा-जल-धारा

गृह-गृह की पार्वती
पुनः सत्य सुन्दर शिव को सँवारती।
उर-उर की बनी आरती
प्रान्तों की निश्चल ध्रुव तारा।

'सरस्वती' से कविता के वापस होने का दुःख निराला को कुछ कम नहीं हुआ, किन्तु इससे उनकी बुद्धि-विकास में कोई बाधा नहीं आयी। जिस तरह स्वच्छ और पुष्ट बीज का अंकुर पृथ्वी की समस्त कठोरता को भेद कर बाहर निकल आता है, उसी प्रकार एक सच्चे कवि की प्रतिभा अनेकानेक मानिसक, शारीरिक तथा सामाजिक बाधाओं के आवरण को छिन्न-भिन्न कर अपनी बुद्धि का प्रकाश फैला ही देती है। 'सरस्वती' में निराला ने इसी समय 'हिन्दी-बँगला का तुलनात्मक व्याकरण' नामक लेख भेजा, जो छप भी गया।

सन् '२० के अन्त में श्रीरामकृष्ण मिशनवाले 'समन्वय' नाम से एक हिन्दी पत्र निकालने वाले थे, जिसके लिए एक योग्य सम्पादक की आवश्यकता थी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने उन्हें सूर्यकांत त्रिपाठी (पूर्व नाम सूर्यकुमार तेवारी) का नाम सुझाया। निराला ने अपनी विवशता के कारण काम करना स्वीकार कर लिया। आचार्य शिवपूजनसहाय ने 'निराला अभिनंदन ग्रंथ' में इस घटना का उल्लेख किया है—"मैं वहाँ बालकृष्ण प्रेस में रहता था, जो विद्यासागर कॉलेज के पास था। प्रेस के मकान के ऊपरवाले खण्ड में विवेकानन्द सोसायटी के कुछ संन्यासी रहते थे। उनमें स्वामी माधवानन्दजी एम्० ए० 'समन्वय' नामक हिन्दी मासिक पत्र निकालते थे। उसके लिए एक सुयोग्य सम्पादक की तलाश में पूज्य आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के यहाँ गये थे। आचार्य द्विवेदी जी ने उन्हें निरालाजी का नाम बतलाया। स्वामीजी बड़े आग्रह और आदर से निरालाजी को कलकत्ता लाये। आचार्य द्विवेदी के स्नेहपूर्ण आदेश से निराला संन्यासियों की मण्डली में चले आये। विवेकानन्द सोसायटी में आ जाने पर भी निराला ने विद्वान् संन्यासियों पर अपनी योग्यता और सुशीलता की छाप बिठा दी। मैंने देखा था कि वहाँ विवेकानन्द सोसायटी के बड़े-बड़े विद्वान् संन्यासियों पर भी 'निराला' की दार्शनिक ज्ञान-गरिमा का सिक्का जम गया था और वे लोग निरालाजी को बड़े आदर-मान से रखते थे।"[1]

---

१. निराला अभिनंदन ग्रंथ : बरुआ, पृ० ३०

रामकृष्ण मिशन के तत्त्वावधान में स्वामी माधवानन्द के सम्पादकत्व में कलकत्ते से १९२२ में 'समन्वय' का प्रकाशन हुआ था। यह मासिक पत्र था। सूर्यकान्त त्रिपाठी इस पत्र के सहायक सम्पादक थे। इन्हीं के स्नेहानुरोध से मुंशी नवजादिक लाल और बाबू शिवपूजनसहाय इसमें आये थे। इस प्रकार इस पत्र को एक श्रेष्ठ सम्पादक-मण्डल का सहयोग मिला था। निराला द्वारा यह प्रथम सम्पादित पत्र था। निराला इस पत्र से पत्रकारिता की दीक्षा ले रहे थे। इसका मार्मिक उल्लेख आचार्य शिवपूजनसहाय ने 'निराला-अभिनंदन-ग्रंथ' में किया है– "जीवन से विरक्त, परिवार के स्वजनों से अनाथ बंगाली सामन्तशाही में परिपुष्ट और पोषित लेकिन उसी सामन्तशाही से विद्रोह किये एक सुकुमार और सुन्दर युवक स्वामी विवेकानन्द की ज्ञानपीठ में अध्यात्मवाद से अपनी आन्तरिक मूर्च्छित शान्ति को पुनः सजीव करने के लिए कलकत्ता में ठहरा। अभी इसे कुछ ही समय लगा था कि वह इस कठोर साधना से विचलित हो गया। यह भी कह सकते हैं कि इस साधना में एक साँस डूबे रहते हुए वह अपनी तरुणाई का असली पड़ाव खोजने के लिए व्यग्र हो उठा। रामकृष्ण मिशन से प्रकाशित होने वाले 'समन्वय' नामक आध्यात्मिक मासिक का सम्पादन करते हुए, यह युवक हिन्दी-पत्रकारिता की दीक्षा ले रहा था। विचित्र प्रारम्भ था यह। संन्यासयों के बीच घिरे रह कर लाड़ और मस्ती की जिन्दगी से पालित यह युवक अपने उद्विग्न मन का ठहराव शायद पा लेता था कि दुर्घटना यह घटी कि इस युवक ने रामकृष्ण मिशन में रहते हुए अपना निजी जीवन जीना शुरू कर दिया। अपने अवकाश के क्षणों में वह जीवन का दीर्घ सूत्र पकड़ कर खींचा करता। दुःशासन ने द्रौपदी का, जो कि उस युग की भोग्या तरुणी रह चुकी थी, उसके संयुक्त पाँच पतियों के सामने चीरहरण किया। सम्भवतः दुःशासन का दुष्प्रयास रहा हो कि वह अनेक पतियों की प्रथा को सरे-बाजार भ्रष्ट कर देना चाहता था और निःसदेह उसका यह प्रयास इतिहास में ज्वलन्त बनकर रह गया है कि वह प्रथा आज दिन धूल-धूसरित हो गयी है। यह युवक दुःशासन बनकर अपने जीवन के गत्यवरोध पर सवार, रूमानी, राजकुमार की नाईं, जीवन का दीर्घ चीरहरण करने की जिद पकड़ बैठा था। विचित्र प्रतिक्रिया थी इस युवक पर रामकृष्ण मिशन की आध्यात्मिकता की।"[१]

"इस प्रकार, भारतीय कवियों की जो परम्परा रही है कि उन्होंने जीवन-संघर्ष को हस्तामलक बनाकर महाकाव्य रचे हैं, उसी का शुभ श्रीगणेश करते हुए

१. निराला अभिनंदन-ग्रंथ : बरुआ, पृ० २७

इस युवक ने जीवन में संन्यास का गुरु-मन्त्र लेकर एकनिष्ठ भाव से सरस और कर्ममय जीवन की मधुर सूक्तियों का पाठ तथा गायन प्रारम्भ कर दिया। इस युवक का नाम था श्रीसूर्यकान्त त्रिपाठी। मिशन के बंगाली संन्यासी-गण इस युवक को 'शूरजोकान्तो' कहकर पुकारा करते थे। बंगाली खान-पान और बंगाली प्रकृति से अभ्यस्त होने के कारण इसके लिए सरल था कि यह संन्यासियों के बीच परम प्रिय बन गया और इसी विश्वास को लेकर हिन्दी भाषा-भाषियों के बीच परमप्रिय बनने के लिए यह हिन्दी-कविता के दीर्घ पथ पर चल पड़ा।"[१]

इस पत्र का मुख्य विषय था वैचारिक लेखों का प्रकाशन करना। इन वैचारिक लेखों को तत्कालीन विद्वानों ने बहुत पसन्द किया था। हिन्दी के चार विद्वानों की सम्मतियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं, जिनसे 'समन्वय' के वैशिष्ट्य और महत्त्व का उद्घाटन होता है।

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी का मत है 'समन्वय' मेरा प्रेम पात्र है। उसमें यदि दोष देख पड़ते तो वह प्रेम पात्र कैसे हो सकता ? क्योंकि गुणों का आधार तो प्रेम ही है – 'वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि।' उसके कुछ लेखों से मेरा मनोरंजन होता है और कुछ से मेरे आध्यात्मिक ज्ञान की वृद्धि। रामकृष्ण वचनामृत से तो मेरे हृदय में सात्त्विक भावों का अत्यधिक उन्मेष हो उठता है। 'समन्वय' की भाषा और उसके अधिकांश लेखों के भाव इस समय की मेरी चित्त-वृत्ति के सर्वथा अनुकूल हैं।"

समालोचक प्रवर पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने लिखा है "ऐसे पत्रों की आवश्यकता है। जैसे सुन्दर शास्त्रीय नाम है, वैसे ही महत्त्वपूर्ण लेख हैं। रामकृष्ण आश्रम जो अनेक अच्छे कार्य कर रहा है, 'समन्वय' का प्रकाशन मेरी दृष्टि में उन सब में अच्छा है। भिन्न भाषा-भाषी होकर भी आप लोग हिन्दी में ऐसा उत्कृष्ट पत्र निकाल रहे हैं, यह एक गौरव की बात है। 'समन्वय' की भाषा विषय के अनुकूल प्रसन्न और गम्भीर होती है। 'समन्वय' में प्रकाशित 'श्रीरामकृष्ण वचनामृत' और दूसरे वेदान्त-विषयक निबन्ध पृथक् पुस्तकाकार प्रकाशित होने चाहिए। ऐसा प्रशंसनीय साहित्य प्रचार पाने योग्य है। 'समन्वय' की पूरी फाइल मिल सके तो मैं उसे पढ़ना चाहता हूं।"

बाबू श्यामसुन्दरदास का कहना है–'समन्वय' के दर्शन मुझे नागरी प्रचारिणी सभा में हो जाते हैं। आपका उद्देश्य व्यावहारिक जीवन में वेदान्त का

१. निराला अभिनंदन ग्रंथ : बरुआ, पृ० २७

प्रभाव दिखाना है और आप इस उद्देश्य की सिद्धि परमहंस रामकृष्णजी तथा स्वामी विवेकानन्द के आदेशों द्वारा करना चाहते हैं। आपका उद्देश्य सर्वथा श्लाघ्य है और मुझे आशा है कि आप इस कार्य में सफल होंगे। आपका पत्र अपने ढंग पर चल रहा है। मुझे आशा है कि हिन्दी पढ़ने वाले आपके पत्र का यथोचित आदर करके आपके उद्देश्य की सिद्धि में सहायक होंगे।"

मासिक 'मारवाड़ी सुधार' (आरा) के सम्पादक बाबू शिवपूजनसहाय ने 'समन्वय' के विषय में अपने पत्र (वर्ष २, अंक८) में लिखा– "संघ की एक शाखा कलकत्ता में अद्वैताश्रम नाम से प्रसिद्ध है। इसी आश्रम से 'समन्वय' नाम का मासिक पत्र निकलता है। हिन्दी में वह अपने ढंग और विषय का एक ही उत्तम पत्र है। इसके सम्पादक हैं– स्वामी माधवानन्दजी महाराज। आप बंगाली हैं और अँगरेजी के मर्मज्ञ विद्वान् हैं, किन्तु जिस योग्यता से आप 'समन्वय' का सम्पादन कर रहे हैं, वह हिन्दी वालों के लिए शुभ होने पर भी कुछ आश्चर्य-जनक है, क्योंकि स्वामीजी एका एक अपने पवित्र दर्शन से हिन्दी वालों को मुग्ध किया। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि एकाएक 'समन्वय' को लेकर जिस सराहनीय सफलता के साथ आप कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए हैं, वह हिन्दी के लिए सौभाग्य-वर्द्धक और आपके लिए गौरवजनक है।"

'समन्वय' का सम्पादन करते हुए उस पत्र के लिए रचनाएँ प्रस्तुत करना, मुद्रण-कार्य देखना और 'पुस्तक-परिचय' तैयार करना निराला का दायित्व था। 'मिशन' के संन्यासी निराला को बड़े आदर-मान से रखते थे। निराला के भोजन-वस्त्र और उनकी आवश्यकताओं का सम्पूर्ण ध्यान स्वामी माधवानन्दजी और वीरेश्वरानन्दजी रखते थे। यह पत्रिका २८ कालेज मार्केट, कलकत्ता से प्रकाशित होती थी और इसका वार्षिक मूल्य तीन रुपया था। गरीब छात्रों को निःशुल्क और वाचनालयों को कुछ दिनों तक २ रुपये वार्षिक पर ही भेजा जाता था।

'समन्वय' धार्मिक और आध्यात्मिक पत्र था जिसमें मुख्य रूप से धार्मिक एवं सामाजिक विषयों से सम्बन्धित रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। 'समन्वय' एक धार्मिक एवं वेदान्त विषय प्रधान-पत्र है, इसका प्रमाण निराला की कहानी 'सुकुल की बीबी' की निम्नलिखित पंक्तियों से मिल जाता है :

"बहुत दिनों की बात है। तब मैं लगातार साहित्य-समुद्र-मंथन कर रहा था, पर निकल रहा था केवल गरल। पान करने वाले अकेले महादेव बाबू।

शीघ्र रत्न और रंभा के निकलने की आशा से अविराम मुझे मथते जाने की सलाह दे रहे थे। यद्यपि विष की ज्वाला महादेव बाबू की अपेक्षा मुझे ही अधिक जला रही थी, फिर भी मुझे एक आश्वासन था कि महादेव बाबू को मेरी शक्ति पर मुझसे भी अधिक विश्वास है। इस पर वेदान्त-विषयक नीरस एक साम्प्रदायिक पत्र (निराला का आशय 'समन्वय' से है) का सम्पादन-भार छोड़कर मनसा-वाचा-कर्मणा से सरस कविता-कुमारी की उपासना में लगा।"[१]

"सांसारिक झंझट-झमेलों में फँसे रहने वाले मनुष्यों को अपनी चित्त की शान्ति और भावी कल्याण के लिए 'समन्वय' अवश्य पढ़ना चाहिए। इसमें उपर्युक्त परमहंसदेव और स्वामीजी के सरल एवं बारीक उपदेशों की ऐसी बहार रहती है कि उन्हें हृदयंगम करने पर मोह-माया के जाल में फँसे हुए मनुष्य का शुष्क हृदय भी शान्ति की सुशीतल अमृत-धारा से सिक्त हो जाता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सदा ठीक समय पर निकलता है और पाठकों के सामने गहन विषयों को भी सरस और शुद्ध भाषा में सुगमतापूर्वक उपस्थित करता है।"[२]

चूँकि रामकृष्ण मिशन और विवेकानन्द से निराला का सम्बन्ध था, इसीलिए मिशन और विवेकानन्द के विचारों से वे प्रभावित हुए। इस दशा में मिशन और विवेकानन्दजी की आध्यात्मिक तथा अद्वैतवादी दर्शन की मान्यताओं का विश्लेषण करना आवश्यक है। रामकृष्ण मिशन और विवेकानन्द के पूर्व ब्राह्म-समाज और प्रार्थना-समाज का उदय एक तरह से भ्रम की स्थिति में हुआ, जबकि चेतना अपनी गति के लिए रास्ता ढूंढा करती है। एक प्रकार से दिग्भ्रम का वातावरण तत्कालीन आन्दोलनों में दिखाई पड़ता है। ऐसी स्थिति में महर्षि दयानन्द का आगमन वेदों की पुनः स्थापना और आर्यों के महत्त्व की प्रतिष्ठा को लेकर हुआ। ब्राह्म-समाज और प्रार्थना-समाज को लेकर लिखी गयी उनकी आलोचनाओं में स्वदेश-भक्ति, वेद-प्रतिष्ठा और आर्यों के मार्ग-दर्शन का प्रयत्न है। तत्कालीन परिस्थिति में भारतीय जनता को अपने अतीत पर विश्वास और हिन्दुत्व-शक्ति का परिचय देना तथा उन्हें प्रगति के लिए कृतसंकल्प करना था। दयानन्द ने भी बुद्धिवाद को अपना अस्त्र बनाया। मानवतावाद के प्रति भी उनकी स्वाभाविक गति थी। आर्य समाज का महत्त्व इसी में है कि उसने हिन्दुओं की हीनभावना को मिटाया, उन्हें उत्साह-सम्पन्न किया और प्रगति के लिए तैयार किया। आर्य-

१. सुकुल की बीबी : निराला
२. निराला अभिनंदन ग्रंथ-शिवपूजनसहाय, पृ० २२७

समाज के उदय के बाद अनवरत उदासीनता की मनोवृत्ति विदा हो गयी। हिन्दुओं का धर्म एक बार फिर आलोकित हो उठा।[१] एनीबेसेण्ट तक ने अखिल विश्व का कल्याण हिन्दुओं के जागरण में माना। उन्होंने कहा कि चालीस बर्षों के गम्भीर चिन्तन के बाद मैं यह कह रही हूँ कि विश्व के सभी धर्मों में हिन्दू धर्म से बढ़कर पूर्ण वैज्ञानिक, दर्शनयुक्त एवं आध्यात्मिकता से परिपूर्ण धर्म दूसरा और कोई नहीं है।"[२]

ये प्रयत्न और प्रयास उस प्रमुख सांस्कृतिक जागरण का कार्य करते हैं जो रामकृष्ण मिशन और स्वामी विवेकानन्द के द्वारा सम्पूर्ण भारत में फैल चुका था और जिस धर्म ने अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में भारत के अध्यात्म की विजय स्थापित की थी। दयानंद और राजाराममोहनराय का कार्य हिन्दुत्व और सांस्कृतिक नवोत्थान की पूर्ति करना है। अब तक के प्रयत्न या तो बुद्धिवाद और तर्क पर आश्रित थे या उनका लक्ष्य समाज-सुधार के रूप में बाह्यमुखी था। लेकिन रामकृष्ण के आगमन से धर्म और जाग्रति तथा विश्वास और उत्थान आत्मा के प्रकाश से विभासित हुए। धर्म बौद्धिकता की वस्तु न होकर अनुभव की वस्तु है, यही रामकृष्ण का निर्देश था। दार्शनिक सत्य यहाँ आकर आत्मिक अनुभूति के विषय बनते हैं। सहजानुभूति और अध्यात्म इस नवीन आन्दोलन के मूल हैं। जीवन में आनन्द और अतीन्द्रिय रूप की पूजा करना रामकृष्ण की साधना का मूलाधार है। यह भारत की सनातन परम्परा का विकसित रूप था। स्वामी रामकृष्ण ने जिस भाववादी साधना और अद्वैत दर्शन की स्थापना की थी, उसे स्वामी बिवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त ने जीवन में प्रतिष्ठित किया। परमहंस की साधनात्मक अनुभूति को विवेकानन्द ने व्यावहारिक रूप दिया और एक कर्मठ तथा विश्वासी भारत का सृजन किया। विवेकानन्द ने न केवल हिन्दुओं को अतीत के प्रति अनुरक्त ही किया, न केवल भारतीय संस्कृति में नयी चेतना का संचार किया बल्कि भविष्य के प्रति उन्हें कृत-संकल्प होने का संदेश भी दिया। विवेकानन्द की वाणी से भारत की सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का उदय हुआ। वर्तमान भारत का आध्यात्मिक जागरण विवेकानन्द के द्वारा ही हुआ। इसकी शक्ति उन्हें बेदान्त से प्राप्त हुई। व्यावहारिक वेदान्त का यह सन्देश भारत के सम्पूर्ण सांस्कृतिक जीवन में एक नवीन चेतना का संप्रसार करता है। हिन्दी-साहित्य और विशेषतः निराला को विवेकानन्द की इस साधना से अपूर्व बल प्राप्त हुआ।

१. निराला-अभिनंदन-ग्रंथ : शिवपूजनसहाय, पृ० २२७
२. 'समन्वय'-वर्ष १, अंक १, पृ० २९

उनके व्यक्तित्व और काव्य पर तो प्रत्यक्ष ही रामकृष्ण मिशन और विवेकानन्द के व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ा है।

विवेकानन्द ने कहा था कि यह संसार, प्रकृति और माया भी अनादि और अनन्त हैं। सृष्टि को उत्पन्न करने वाली शक्ति सर्वकाल में विद्यमान रही है और वह अभी भी वर्तमान है। सृष्टि का तात्पर्य विवेकानन्द ने प्रकाशित होना और बाहर निकलना माना है। उनका कथन है कि अँगरेजी में 'क्रियेशन' शब्द से जो तात्पर्य निकलता है, वह भ्रामक है, युक्तिपूर्ण नहीं है, क्योंकि वह असत् से सत् की उत्पत्ति मानता है। अभाव से भाव का और शून्य से संसार का उदय मानता है। सृष्टि का यथातथ्य अर्थ 'प्रोजेक्शन' है। समस्त प्रकृति और सृष्टि मौजूद तो रहती है, केवल प्रलयकाल में कुछ समय के लिए समाप्त हो जाती है और फिर प्रकाशित होती है, बाहर आती है।[1] यह सृष्टि किसने की ? विवेकानन्द उत्तर देते हुए कहते हैं- ईश्वर ने की, ब्रह्म ने की, जो नित्य, नित्य शुद्ध, सदा जाग्रत, सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञ, परम दयामय, सर्वव्यापी, निराकार और अखंड है। विवेकानन्द ने यहाँ आकर ऐसे बहुत से प्रश्नों की शंकाओं का समाधान किया, जो तर्क के आधार पर नास्तिकता को प्रश्रय दे सकता है। उन्होंने शंका उठाई कि यदि ब्रह्म ही इस संसार का स्रष्टा और नियंता है, तो संसार में वैषम्य क्यों है ? उसमें आपत्तियाँ क्यों हैं ? उत्तर में वेदान्त कहता है कि यह ईश्वर का दोष नहीं है कि जगत् में यह वैषम्य है, यह प्रतिद्वन्द्विता विद्यमान है। इसकी सृष्टि हमीं ने की। ईश्वर की कृपा तो नित्य है, वह अपरिवर्तनीय भी है। हमीं लोग वैषम्य के मूल हैं। सृष्टि की तरह जीवन भी अनादि और अनन्त है। शून्य की उत्पत्ति ही भ्रामक है जिसे स्वामीजी ने कर्म-विधान कहा – "वह मानता है कि हमीं कार्य हैं और हमीं कारण हैं। मनुष्य की इच्छाशक्ति को स्वामीजी ने किसी भी घटना के अधीन-अनुवर्ती नहीं बताया। उसकी प्रबल, विराट्, अनन्त इच्छा-शक्ति और स्वतन्त्रता के सामने सभी शक्तियाँ-यहाँ तक कि प्राकृतिक शक्तियाँ भी सिर झुका देंगी।"[2] आत्मा को उन्होंने चली आती हुई अद्वैत-परम्परा के ही अनुसार आदि अन्त-रहित और स्वरूपतः अविनाशी माना। वह सर्व-विद्य-शक्ति है और आनन्द, पवित्रता, सर्व-व्यापिता और सर्वज्ञता आत्मा की विशेषताएँ हैं। वह प्रत्येक में अन्तर्हित है। इस आत्मा और परमात्मा का अद्वैत सम्बन्ध है।"[3]

---

१. द कल्चरल हेरिटेज ऑफ् इण्डिया भाग २

२. सृष्टि की यह व्याख्या हम निराला की कतिपय कविताओं में भी देखते हैं।

३. निराला की कविता—'तुम हो महान्'

विवेकानन्द ने कहा – "यह एक महान् तत्त्व है, जिसे हमें याद रखना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक प्राणी में – चाहे वह कितना दुर्बल हो या दुष्ट हो, बड़ा हो या छोटा, वही सर्वव्यापी सर्वज्ञ आत्मा विराजमान् है। अन्तर जो कुछ है, वह आत्मा में नहीं, उसकी प्रकाश की न्यूनाधिकता में है।[१] यही धारणा समस्त चेतन सृष्टि में भ्रातृत्व का रूप धारण करती है।"[२] "इस आत्मा का लक्ष्य है स्वाधीनता! मुक्ति! अनन्त आनन्दस्वरूप और लिंग-भेद-रहित इस आत्मा का लक्ष्य स्वातन्त्र्य है।"[३] "इस मुक्ति और स्वाधीनता का बाधक अज्ञान है, क्योंकि वही बन्धन है। इसे दूर करने का उपाय ज्ञान है।"[४] ज्ञान का अस्तित्त्व तो स्वामी जी ने स्वीकार किया, लेकिन इस ज्ञान की दिशा उन्होंने निवृत्ति की ओर न मोड़कर प्रवृत्ति की ओर दिखाई। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए भक्तिपूर्वक ईश्वर की आराधना करना तो बताया ही, साथ ही सर्व-प्राणियों को परमात्मा का मन्दिर समझकर उनसे प्रेम करने से ज्ञान होता है, यह भी बताया हैं। यह कहना विश्व मानवता का ही नहीं प्राणि-जगत् के प्रति भी प्रेम का सन्देश देना था। उन्होंने कहा कि अद्वैतवाद और वेदान्त यही शिक्षा देता है कि मनुष्य-जाति को आत्मवत् प्यार करो। मनुष्य और अन्य प्राणियों में भी कोई अन्तर नहीं है, इसीलिए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही अखण्ड स्वरूप है और उसी की ज्योति है। हम उनसे प्रेम करते हैं, वस्तुतः हम स्वयं से प्रेम करते हैं, उन्हें मुक्ति और स्वाधीनता प्रदान करते हैं, वस्तुतः हम स्वयं मुक्त और स्वाधीन होते हैं। इस अद्वैतवादी विश्लेषण को स्वामीजी ने जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र में उतारा। कुम्भकोनम् के अपने भाषण में स्वामीजी ने कहा था – "द्वैतवाद के प्रेम, भक्ति और उपासना में कैसा अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है-मैं जानता हूँ। उसकी अपूर्वमहिमा को मैं भली प्रकार जानता हूँ, लेकिन आनन्द पुलकित होकर आँखों से प्रेमाश्रु बहाने का समय अब नहीं है। हमने बहुत-बहुत आँसू बहाए हैं। अब कोमल भाव धारण करने का समय नहीं है। कोमलता की साधना करते-करते हम लोग जीते जी मुर्दा हो रहे हैं। हमारे देश के लिए इस समय आवश्यकता है-लोहे की माँस-पेशियों और फौलाद की नाड़ी तथा धमनी की, क्योंकि इन्हीं के भीतर वह मन निवास करता है जो शंपाओं एवं वज्रों से निर्मित होता है। शक्ति,

---

१. निराला की कविता—'तुम और मैं'

२. यह निराला के मानववाद और सर्वव्यापी करुणा का दार्शनिक आधार है।

३. एवं तु पण्डिते ज्ञात्वा सर्वभूतमयहरिम्।

४. महाप्राण निराला : गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ० २७

पौरुष, क्षात्र-वीर्य और ब्रह्म-तेज, इनके समन्वय से भारत की नयी मानवता का निर्माण होना चाहिए।"[1] "अपने आप पर विश्वास और परमात्मा पर विश्वास, यही उन्नति का एकमात्र उपाय है। नास्तिक वह नहीं है, जो ईश्वर पर अविश्वास करता है, नास्तिक वह है, जो अपने ऊपर अविश्वास करता है। अपने आप पर विश्वास करना सीखो और इसी आत्मविश्वास के बल से अपने पैरों पर खड़े हो जाओ और शक्तिशाली बनो। हमारे देश को अब वीरता की आवश्यकता है। अद्वैतवाद हमें सर्वशक्तिमान, तेजस्वी और सर्वज्ञ होने को कहता है।"[2]

स्वामीजी ने अनेक बार कहा कि भारत का कल्याण शक्ति की साधना में है। जन-जन में जो शक्ति छिपी है उसे साकार करना है। इसीलिए कदाचित् विवेकानन्द का धर्म राष्ट्रीयता को उत्तेजना देने वाला कहा गया है। उनका विश्वास विराट्-पूजा में था। नव भारत में जिस विश्व-धर्म और विश्व-बंधुत्व तथा विश्ववाद की भावना राममोहनराय से आरम्भ हुई थी, उसका चरम परिष्कार विवेकानन्द में हुआ। यही नहीं, नये भारत तथा नये साहित्य में नारी के प्रति जो उदार दृष्टिकोण और श्रद्धा का भाव आया, वह भी कई अर्थों में विवेकानन्द की असीम उदारता का देय माना जा सकता है। ईसा को विवेकानन्द ने अपूर्ण कहा, क्योंकि नारी को उन्होंने नर के समकक्ष नहीं रखा। नारियों को उन्होंने महाकाली की साकार प्रतिमा माना था।[3] "यदि इन्हें ऊपर नहीं उठाया तो मत सोचो कि तुम्हारी अपनी उन्नति का कोई अन्य मार्ग है। संसार की सभी जातियाँ नारियों का समुचित सम्मान करके ही महान् हुई हैं।"

इस प्रकार रामकृष्ण मिशन और स्वामी विवेकानन्द ने नये भारत का आध्यात्मिक निर्माण किया था। "वर्तमान भारत जिस ध्येय को लेकर उठा है, उसका सारा आख्यान स्वामी विवेकानन्द कर चुके थे।"[4] निवृत्ति से प्रवृत्ति की ओर दार्शनिक संक्रमण विवेकानन्द की देन है, जिसका प्रवर्तन राजनीति और जीवन में तिलक ने बाद में किया। तिलक के उपदेश निर्भीकता और सच्चाई के सबसे बड़े उपदेश थे।"[5] विवेकानन्द की आध्यात्मिक और दार्शनिक मान्यताओं से निरालाजी बड़ी दूर तक प्रभावित हुए।

---

१. निराला की कविता में छन्दोमुक्ति-'आत्मा की मुक्ति से प्रमाणित की गई है।
२. शक्ति और पौरुष का आख्यान निराला के काव्य का मेरुदण्ड है।
३. निराला : जानकीवल्लभ शास्त्री, पृ० १७३
४. जफना का भाषण।
५. संस्कृति के चार अध्याय : दिनकर, पृ० ५०९

निराला ने जीवन-संघर्षों के बीच अपने जिस व्यक्तित्व का निर्माण किया, उसको दार्शनिक आधार प्रदान किया 'समन्वय-काल' में रामकृष्ण मिशन ने। 'समन्वय' का सम्पादन करते हुए निराला को एक दार्शनिक परितृप्ति हुई। रामकृष्ण परमहंस की भाव-साधना और विवेकानन्द का वेदान्ती अद्वैतवाद, दोनों मिलकर निराला में एकाकार हो गये। निराला के अब तक जाग्रत अहं को एक दार्शनिक आधार मिला। वह अनुभवमूलक भौतिक और सामाजिक अहं आत्मिक अहं से मिलकर समरस हो गया। यहाँ आकर उनकी इच्छाएँ दार्शनिक परिवेश ग्रहण करती हैं। विद्रोही-तेजस्वी स्वामीविवेकानन्द के चरित्र में निराला ने अपने चरित्र की खोज की। दूसरों को दुःखी देखकर विकल होना तथा विपत्ति में धैर्य न छोड़ते हुए भी निर्विकार चित्त से कर्तव्य करते जाने की निराला की साधना को बल स्वामी विवेकानन्द के चरित्र से मिला।

विवेकानन्द 'शिमला मुहल्ले' की कार्नवालिस स्ट्रीट की व्यायामशाला के नियमित सदस्य थे और उन्होंने बाक्सिग में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया था। विवेकानन्द क्रिकेट के उत्कृष्ट खिलाड़ी थे। निराला ने भी हजारी पहलवान के अखाड़े में कुश्ती की शिक्षा ली थी और कुछ ही दिनों में अप्रतिद्वन्द्वी घोषित किये गये थे। कुश्ती की कला के लिए वे हजारी पहलवान द्वारा प्रशंसित भी हुए थे।[1] क्रिकेट की इच्छा निराला ने डलमऊ के खेतों में पूरी की थी। संगीत में स्वामी विवेकानन्द दक्ष थे। प्रारम्भ से ही निराला भी शास्त्रीय संगीत के अच्छे ज्ञाता थे। पुत्र रामकृष्ण को धमार की शिक्षा उन्होंने स्वयं दी है। संगीत और व्याकरण के वे श्रेष्ठ ज्ञाता हैं। जो 'सुहेले' वे गाते हैं, उसके गानेवाले कहते हैं-शास्त्रीय संगीत नहीं गा सकते, क्योंकि उसमें पहले गले को बिगाड़ना पड़ता है।[2] प्रतिभा, पांडित्य, तर्क-शक्ति और संगीत के साथ सुदृढ़, सबल और सुन्दर शरीर-जैसा विवेकानन्द का था, उससे कहीं अधिक निराला का था। स्वामीजी अपनी शैशवावस्था में जीवन के स्वच्छन्द-अविराम प्रवाह के हिमायती थे और निराला का तो यह जन्मजात स्वभाव रहा है। वे कहते हैं– 'इच्छाओं को पूरा करके ही उन पर विजय प्राप्त की जा सकती है। किसी इच्छा को बलपूर्वक दबाकर

---

१. हिन्दी छन्दों की अपेक्षा उन्हें कुश्ती के दाँव कहीं ज्यादा याद हैं। धोबी पाटा, कलाजंग, सखी, वहकूली, घिस्सा, कुली वगैरह रियाज के साथ बरजबान है। थियुरी और प्रैक्टिकल दोनों में ही फर्स्ट क्लास पा चुके हैं।
–निराला - डॉ० रामविलास शर्मा, पृ० ३१–३२

विजयी होना कठिन है। ज्ञानपूर्वक विजयी होना शाश्वत है।"[1]

विवेकानन्दजी व्यक्ति का मस्तक ऊँचा कर दृढ़ उद्यम और अटूट संकल्प से जीवन के क्षेत्र में संघर्ष करने को उद्यत रखना चाहते थे। 'क्लैव्यं मास्म गम पार्थं (श्रीमद्भगवतगीता) के स्वर से स्वर मिलाकर विवेकानन्द ने वीरता की शिक्षा दी थी, जिसे अपने जीवन में निराला ने जितना उतारा, उतना सम्भव है और कहीं देखने को न मिले। स्वामीजी एक योद्धा संन्यासी कहे गए हैं और कौन निराला को निर्विकार, निर्लिप्त गृहस्थ नहीं कहेगा। उदारता की दृष्टि से दोनों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। स्वामीविवेकानन्द को जब अपने भाषणों के पश्चात अपनी इच्छानुसार धन मिल जाता था तो वे उसे पाने से पहले ही दानकर दिया करते थे। निराला भी कवि-सम्मेलनों आदि से प्राप्त धन का हाथों में आने से पहले ही विभिन्न संस्थाओं को दानकर देते थे। निराला की उदारता का यह आख्यान यों भी अप्रतिम है। श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार ने अपने चरित्रनायक स्वामी विवेकानन्द के विषय में लिखा है– "स्वधर्म या स्वजाति का पक्ष समर्थन कर तृप्त सिंह की तरह ग्रीवा उठाकर खड़े होते थे तो उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानों वे अभिमान-शून्य उदासीन संन्यासी नहीं, बल्कि मध्ययुग के कोई गर्वित आत्माभिमानी उद्धत अहंकारी राजपूत वीर हैं।"[2] जिस ऐतिहासिक बोध, जातीय विशेषता और हिन्दुत्व का उद्घोष युग-प्रवर्तक विवेकानन्द ने किया था, उसकी प्रतिध्वनि निराला के 'शिवाजी के पत्र','जागो फिर एक बार','दिल्ली','यमुना के प्रति' आदि कविताओं में मिलती है। ये 'उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत्' के ही स्वर हैं। यह सोई हिन्दूजाति को आत्म-चेतना देने के स्वर हैं, वीरता की प्रतिष्ठा के लिए स्वामी विवेकानन्द ने बंगाल में महावीर की पूजा प्रचलित करायी थी और निराला आरंभ से ही हनुमान के भक्त रहे। कोमल शब्दों और भावों की साधना के स्थान पर उनकी बादल राग की कविताएँ 'जागो फिर एक बार' आदि इसकी प्रमाण हैं। उनके मुक्त छन्द में ही मानों वैदिक छन्दों का गुरु-गम्भीर स्वर मुखर हो उठा है। कदाचित इसीलिए निराला को स्वामी विवेकानन्द का साहित्यिक प्रतिनिधि कहा गया है।[3] जहाँ प्रसाद के काव्य की भूमि औपनिषदिक

---

१. निराला-एक भेंट : श्री रमण, अवन्तिका, जून १९५५

२. निराला अभिनंदन ग्रंथ : २५वाँ संस्मरण, पृ० ६१

३. विवेकानन्द-चरित्र : सत्येन्द्रनाथ मजूमदार (द्वितीय संस्करण), पृ० २३५

और आनन्दवादी विचारधारा वाली है वहाँ निराला के काव्य की वेदान्ती और अद्वैतवादी।

स्वामी विवेकानन्द के वेदान्त के दोनों स्वरूप निराला के व्यक्तित्व में घटित होते हैं– शक्ति-साधना और करुणा। निराला के जीवन में पौरुष की छटा और कोमलतम वृत्तियों का अदभुत सामंजस्य है। निराला स्वयं अपने और विवेकानन्द में गहरी समता देखते हैं। निराला अपने को अभिनव विवेकानन्द ही मानते हैं। वे कहते हैं-"जब मैं इस प्रकार बोलता हूँ तो यह मत समझो कि निराला बोल रहा है। तब समझो मेरे भीतर से विवेकानन्द बोल रहे हैं। यह तुम जानते ही हो कि मैंने विवेकानन्द का सारा वर्क हजम कर लिया है। जब इस प्रकार की बात मेरे अन्दर से निकलती है तो समझो, यह विवेकानन्द बोल रहे हैं।"[१] निराला की वाणी ही नहीं जीवन भी वेदान्ती संत का प्रत्यक्ष उदाहरण था। आध्यात्मिकता के प्रति निराला में गहरी आस्था थी। उनकी बुद्धि की प्रधान वृत्ति भी श्रद्धा और आस्था का सम्मिलित रूप है। सचेष्ट दार्शनिक और सबल बुद्धिवादी निराला का दार्शनिक आधार विवेकानन्द का व्यावहारिक वेदान्त है। जीवन की गहन तथा रहस्यमय आध्यात्मिक प्रवृत्तियों के साथ यथार्थ के प्रति जागरूकता और शक्ति, साहस, ओज और पौरुष के गायक की आत्मनिष्ठ आध्यात्मिक तन्मयता ने निराला को पूरा वेदान्तिक अद्वैतवादी बनाया है। अद्वैतवादी विवेकानन्दीय पौरुषमयी व्याख्या के अनुरूप निराला के काव्य में कोमल कल्पना और हृदय-स्पर्शी मार्मिक कोमल अनुभूतियों के साथ विचार और दर्शन का प्रतिपादन तथा ओजमय वीररस की वाणी मिलती है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस में धर्म अनुभूति का विषय बन जाता है। निराला का दर्शन और वैचारिक परिपार्श्व भी आत्मिक अनुभूति के रूप में व्यक्त हुआ है। परमहंस की तरह निराला की भाव-साधना की तल्लीनता के भी एकाधिक उल्लेख मिलते हैं। अवश्य ही यह धार्मिक साधना नहीं थी। मतवाला' में भी वे दिनरात इतने चिन्तन में उलझे रहते थे कि उन्हें अपने शरीर और वस्त्रों की सुध नहीं रहती थी। वे स्वभावतः बाह्य-ज्ञान-शून्य रहा करते थे। निराला का जीवन ऋषितुल्य चिन्तन का था।" व्यवहार-जगत् में निराला की उपस्थिति अत्यन्त ही अल्प रहती है। वस्तुतः उनकी स्थिति भावजगत् में अधिक होती है। बाबू शिवपूजनसहाय ने बताया है

---

१. निराला अभिनंदन ग्रंथ : २७वाँ संस्मरण, पृ० ९३

कि 'मतवाला' में काम करते समय भी निराला एक गहरी डुबकी डूबे हुए से रहते थे ।"[1]

निराला वैदांतिक अद्वैतवादी हैं और अद्वैतवादी समस्त चराचर में एक ही तत्त्व की प्रधानता देखता है । उसी के आधार पर समस्त प्रकृति को अपनी आत्मा का प्रक्षेप मानता है । उसका 'अहं' भौतिक अहं नहीं है, न ही उसे मनोविज्ञान की शब्दावली का 'अहं' कह सकते हैं । यह वह 'अहं' न होकर 'आत्म' कहलाता है । दर्शन के क्षेत्र में और विशेषतः अद्वैतवादी दर्शन के क्षेत्र में इस 'अहं' का तात्पर्य 'अहं ब्रह्मास्मि' और 'सोऽहं' होता है । अपनी दार्शनिक मनोवृत्ति के कारण निराला भी 'अहं' को आध्यात्मिक कोटि में ले जा सके हैं । निराला विवेकानन्द की उस वाणी में विश्वास करते हैं जो मानती है कि भय-मुझे किसका भय है । अद्वैतवाद हमें तेजस्वी, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ सोचने को कहता है ।" इसी आधार पर निराला इतने आस्थावान् हैं । इस प्रकार विवेकानन्द और निराला के व्यक्तित्व में समता तथा उनके विचारों-भावों में भी समानता मिलती है । चूंकि इसी 'मिशन' से 'समन्वय' पत्र निकलता था, इसलिए इन समस्त अद्वैतवादी विचारों का प्रभाव उस पत्र पर पड़ा, जिसके कारण वह मूलतः दार्शनिक और आध्यात्मिक पत्र हो गया था । निराला भी इसमें 'एक दार्शनिक' नाम से लेख और सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखते थे, जो शुद्ध दार्शनिक, साहित्यिक तथा सामाजिक होती थीं । एक पत्र में समस्त विषयों से सम्बन्धित लेख होने चाहिए । 'समन्वय' में दर्शन के साथ साहित्यिक, सामाजिक आदि विषयों से सम्बन्धित लेख और टिप्पणियाँ भी मिलती हैं ।

निराला के कविमनीषी के रूप-निर्माण में 'समन्वय' में प्रकाशित काव्य, लेख और टिप्पणियाँ महत्त्वपूर्ण योग देती हैं । 'समन्वय' से ही उनको लेख, निबन्ध लिखने का प्रोत्साहन मिला । 'प्रबन्ध-पद्म' के 'निवेदन' में वे स्वयं इसका उल्लेख करते हुए कहते हैं – "मैंने अभिन्न पद्यों के साथ प्रबन्ध लिखने का श्रीगणेश किया था । मेरे अधिकांश शुभेच्छु मित्रों को निबन्ध पसन्द आये थे । ---- 'समन्वय' में 'एक दार्शनिक' नाम से निबन्धों को देखकर स्वामी माधवानन्द जी महाराज ने मुझे प्रसिद्ध नाम से प्रकाश में आने की आज्ञा दी थी ।"[2] निराला के 'समन्वय' में प्रकाशित निबन्ध मूलतः दार्शनिक हैं । निराला तब एक पत्रकार लेखक थे ।

---

१. निराला अभिनंदन ग्रंथ : ३७वाँ संस्मरण, पृ० ११४

२. निराला अभिनंदन : संस्मरण २, ३४, ३६, पृ० ३१, १०७ एवं ११२–११३

इसलिए उस पत्रिका को ध्यान में रखकर ही वे लेख लिखते थे। सम्पादक – लेखक को अपने पाठकों को भी दृष्टि में रखना पड़ता है। अतएव पाठकों के हित के अनुसार ही निबन्धकार को लेख की सामग्री और प्रतिपादन का ढंग निर्धारित करना पड़ता है। अर्थात् लेखक बहुत सीमा तक अपने पाठकों से बँधा रहने के कारण अपने लेख में पूर्णतया स्वच्छन्द नहीं रह पाता। निराला के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक निबन्ध मुख्य रूप से ध्यातव्य हैं। दार्शनिक विषयों पर लिखते हुए निराला अद्वैतवाद को केन्द्रीय महत्त्व देते हुए प्रतीत होते हैं। निराला – साहित्य में जहाँ-जहाँ दार्शनिक विचारधार प्रकट होती है, वहाँ अद्वैतमत की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ती है। उनके ऊपर अद्वैतमत का गंभीर प्रभाव पड़ा था, जिसका कारण रामकृष्ण मिशन और स्वयं उनके द्वारा सम्पादित 'समन्वय' पत्र ही था। दार्शनिक विषयों के लेखों में लेखक ने तत्त्व-मीमांसा और सूक्ष्म रहस्यों का मर्मोदघाटन किया है। इन दर्शनप्रधान लेखों में सृष्टि के उद्भव, स्थिति और प्रलय का मूल रहस्य है। 'शून्य और शक्ति' नामक लेख में लेखक का तत्त्वचिंतन अत्यन्त गूढ़ और सारयुक्त है। उनकी मान्यता के अनुसार संख्या को उत्पन्न करने वाला स्थल शून्य है। शक्ति संसार को शून्य से पृथक् रखे हुए है। बीज स्वयं गोलाकृति शून्य है। प्रणव ओंकार-ध्वनि सभी वर्णों का सम्मिलित रूप है शब्द विद्या का केन्द्र स्थल शून्य विश्व की व्यक्त अव्यक्त भावनाओं को पर्यवसित कर देता है – "विज्ञान के उद्भव का शून्य जब अन्त के शून्य को आविष्कृत कर लेगा, यद्यपि यह आविष्कार आविष्कारक के मन की मृत्यु है, अतएव क्रियारहित, तब बीच की कुल आविष्कारक युग की जोती-बोई जमीन के परती पड़ जाने की तरह शून्य फल रह जायेगा, निर्वात वृक्ष सर की तरंगों की तरह अविचल शान्ति में लीन।"[१]

उनका अद्वैत-चिन्तन अपने भीतर एक विचित्र रसात्मकता लिए हुए है। 'प्रबन्ध-पद्म', में संकलित उनका निबन्ध 'शून्य और शक्ति' उनके दार्शनिक विवेचन पर प्रकाश डालता है। 'शून्य और शक्ति' के रूप में निराला मानों अव्यक्त तत्त्व की मूलभूत एकता और नाना नाम-रूपों में व्यक्त होने वाली उसकी प्रकट सत्ता की व्याख्या न करते हैं – "शून्य या बिन्दु सब शास्त्रों में सब तरफ सब स्वयंसिद्ध है। उद्भव, स्थिति और प्रलय का शून्य ही मूल रहस्य हैं।"[२]

१. प्रबन्ध-पद्म : निराला, निवेदन

२. प्रबन्ध-पद्म : निराला पृ० ४–५

केवल शक्ति संसार को शून्य से अलग किए हुए है, दूसरे तरीके से, शून्य की व्याख्या करने में सदैव तत्पर हैं।[1] 'शून्य और शक्ति' के इस सिद्धान्त को वे भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में घटित होता हुआ देखते हैं। उन्होंने समस्त गोचर क्रिया-कलापों के मूल में शून्य और शक्ति की महिमा देखी है। निराला के दार्शनिक चिन्तन में आधुनिक प्रगतिशील मान्यताओं का समाहार है। 'शून्य', 'शक्ति' 'अद्वैत', 'माया' आदि परम्परित शब्दों को उन्होंने युग-सापेक्ष-अर्थ-सन्दर्भों में विश्लेषित किया है। निराला के दार्शनिक चिन्तन में व्यवहारपक्ष को सदैव अग्रगण्य स्थान मिला है। अपने साहित्यिक निबन्ध 'मुसलमान और हिन्दी कवियों में विचार-साम्य' में वे अद्वैतमत की पुष्टि दोनों धर्मों के विषय में इस प्रकार करते हैं "जिस तरह हिन्दुओं के महापुरुषों ने सत्य से ओत-प्रोत एक ही ज्ञानमय कोष का तत्त्व हासिल किया, उसी तरह मुहम्मद ने भी तपस्या द्वारा उस 'आवाहननसोऽगोचरम्' सत्य का साक्षात्कार किया। सिन्धु और विन्दु की उक्ति से ब्रह्म और जीव की जो बातें भारतीय साहित्य में मिलती हैं वही मुसलमान कवियों की कविता में दरिया और कतरे के रूप में आई हैं।[2] दार्शनिक चिंतन की इस कठिन स्थिति में लेखक के निष्कर्ष अत्यन्त संगत और निर्विकार रूप में प्रस्तुत हुए हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है – "महामनीषा जब किसी व्यक्ति विशेष के भीतर जाग्रत होती है, तब उसके अनेक कारण जागरण के उपादान के रूप उपस्थित करते हैं। उन्हीं की सीमा अछोर असीम में स्थिति पाती है और प्रकट शक्ति अप्रकट के वर्ण-गन्ध से हवा के हिल्लोलों पर काँपते हुए कल्पना के कमल को चूमती रहती है। उसका एक-एक दल विकसित होकर सहस्रदल को निर्मित कर देता है। इसी तरह की मुक्ति मनुष्य की मुक्ति है।"[3]

निराला के ये निबन्ध उनके तत्त्वचिन्तक दार्शनिक रूप के प्रमाण हैं। लेखक वैदान्तिक विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित है। 'बाहर-भीतर' शीर्षक निबन्ध में वे संसार को 'प्रवाहयुक्त' सिद्ध करते हैं जिसके अन्तर्गत उत्थान-पतन की लहरें उठा करती हैं, उन लहरों के नीचे स्वतन्त्रता के मोती विराजमान हैं। इस दार्शनिक चिंतन के समय निराला उस समय के स्वातंत्र्य-संग्राम का निर्देशन करते हैं। जड़वाद, वैज्ञानिक भौतिकवाद, अशांति और वर्ग-संघर्ष का

---

१. प्रबन्ध-पद्म : निराला, पृ० २–३
२. प्रबन्ध-पद्म : निराला, पृ० १५
३. प्रबन्ध-पद्म : निराला, पृ० ४३–४४

उल्लेख करते हुए वे भीतरी और बाहरी स्वतंत्रता के स्वरूप का विश्लेषण करते हैं। शब्दों के केन्द्र में स्थिर रहना स्वतन्त्रता है। केन्द्र ब्रह्म है। अपूर्व सहनशीलता तथा धैर्य का फल एक दिन स्वतन्त्रता तथा परमशान्ति में परिणत होगा।"[१]

'प्रवाह' नामक निबन्ध में निराला ब्रह्म और शक्ति की व्यापकता को बताते हुए कहते हैं। विश्व की कल्पना चचल है अतः गतिशील है। परिवर्तन ही प्रवाह का कारण होता है और वही माया है। परिवर्तन को ही निरालाजी ने व्यष्टि या समष्टि का जीवन माना है तथा जीवन को प्रवाहरूप में स्वीकार किया। प्रत्येक जाति का ज्ञान उस जाति के साहित्य में सुरक्षित रहता है। इस साहित्य में जितनी ही मजबूती होगी, जीवनी शक्ति भी उतनी ही अधिक हो जायेगी। लेखक का निष्कर्ष है कि आत्मवाद और मुक्ति ही भारत के जातीय जीवन के मुख्य उद्देश्य हैं। इन निबंन्धों में निराला के दार्शनिक और साहित्यिक रूप का बहुत अच्छा मिश्रण पाया जाता है। अन्य धार्मिक एवं साम्प्रदायिक विषयों पर भी निराला के निबन्ध मनन करने योग्य हैं। श्रीरामकृष्ण की विचारधारा (मिशन) से प्रभावित होकर उन्होंने अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। उनके गौरव का गायन करते हुए वे कहते हैं - "श्रीरामकृष्ण के सहस्र-सहस्र पोत इस समय संसार में ज्ञानमणियों का प्रचार-व्यापार कर रहे हैं। मैं शाक-वणिक बाजार के एक तरफ बैठा हुआ असम्प्रज्ञात सुनता रहा हूँ। लोगों ने ऐश्वर्य की मदिरा बहुत पी, अब शुष्क तालु प्रेम-पीयूष-पान करना चाहते हैं।"[२]

निराला ने श्रीरामकृष्ण को एक सिद्ध पुरुष और युगावतार भगवान् के रूप में प्रतिष्ठित किया जिन्होंने भारत के धार्मिक पतझड़ को अपने किसलय साधना-कुल मृदुल वसंत स्पर्श से पूरा किया।[३] निराला ने उनके जीवन-परिचय के माहात्म्य को स्पष्ट करते हुए हर धर्म में उनकी सर्वव्यापकता प्रमाणित की है। श्रीरामकृष्ण को विज्ञान का विद्वान् सिद्ध करते हुए वे कहते हैं कि परमाणुओं के संघात से जो शक्ति पैदा होती है, वे उसके नियामक हैं। श्रीरामकृष्ण की अद्वैत-साधना उनके भक्त सम्प्रदाय और भारतीय जन-जीवन में उनकी व्यापक पृष्ठभूमि का निरूपण करते हुए निराला उनके शक्ति-जागरण और अवतार के कारणों

१. प्रबन्ध-पद्म : निराला, पृ० ५२–५३
२. संग्रह : निराला, पृ० ८
३. संग्रह : निराला, पृ० ३३

पर प्रकाश डालते हैं और अन्य साधकों से उनका तुलनात्मक विश्लेषण करते हैं। इसी तरह 'वेदान्त केसरी स्वामी विवेकानन्द' शीर्षक निबन्ध में निराला ने उनके जीवन-परिचय, दिव्य चमत्कार, उनका वाक्-चातुर्य, भाषण-निपुणता, उनकी बहुमुखी प्रतिभा और मुखमण्डल की दीप्ति का संस्मरणपूर्वक विश्लेषण किया है।

उपर्युक्त सारे निबन्ध 'समन्वय' नामक आध्यात्मिक पत्र में प्रकाशित हुए थे। निराला के ये निबन्ध उनके आरम्भकाल के निबन्ध हैं जिनसे उनके दार्शनिक व्यक्तित्व का प्रमाण मिलता है। निराला के दर्शन-सम्बन्धी समस्त तत्त्वों का समावेश इन निबन्धों में हुआ है। निराला का काव्यात्मक और तत्त्व-चिंतन प्रधान दोनों रूप 'समन्वय' पत्रिका के माध्यम से सामने आया है। अतः स्पष्ट है कि निराला के 'कविमनीषी' रूप के निर्माण में 'समन्वय' पत्र का योगदान विलक्षण है।

सांकेतिक लेखन के रूप में निराला ने एक नवीन सूत्र-शैली का प्रचार किया था जो कूटार्थों, रहस्य, प्रतीकों, मिथकों और प्राचीन तत्त्वों, गूढ़ार्थों से सम्पन्न थी। इसका प्रथम प्रयोग उन्होंने 'वर्तमान धर्म' शीर्षक निबन्ध में किया था। किन्तु वह अतिशय प्रतिवाद का विषय बन गया था। निराला लगभग ढाई वर्षों तक इस पत्र का सम्पादन करते कहे जाते हैं। विडम्बनावश 'समन्वय'-जैसे साहित्यिक पत्र का प्रकाशन आगे न हो सका। निरन्तर हानि होने के कारण उसके प्रकाशन को बन्द कर देना पड़ा। निराला द्वारा सम्पादित 'समन्वय' पत्र में निराला की निम्नलिखित कविताओं तथा निबन्धों का प्रकाशन हुआ था, जिनकी एक सूची यहाँ प्रस्तुत की जा रही है :

कविता/निबन्ध		वर्ष, अंक, सन्, पृ० सं०
१–साहित्य की समतल भूमि	--	वर्ष ५, अंक ७, सं० १९८३
२–भाषा की गति और हिन्दी की शैली	—	वर्ष २, अंक ९, सं० १९८०
३-ज्ञान और भक्ति पर गोस्वामी तुलसीदास	--	वर्ष २, अंक ५, सौर ज्येष्ठ सं० १९८०
४-शक्ति-परिचय	--	वर्ष २, अंक ११, सं० १९८०
५–बाहर-भीतर	--	वर्ष १, अंक १०, कार्तिक सं० १९७९ पृ० ४५१–५८

कविता/निबन्ध		वर्ष, अंक, सन, पृ० सं०
६-प्रवाह	--	वर्ष १, अंक १२, पौष सं० १९७९, पृ० ५५२-५५८
७-तुलसीकृत रामायण में अद्वैतवाद	--	वर्ष १, अंक ९, आश्विन सं० १९७९, पृ० ३९९-४००
८ विज्ञान और गोस्वामी तुलसीदास	--	वर्ष ६, अंक ८, भाद्रपद सं० १९८४, पृ० ३५५-३५६
९-युगावतार भगवान् श्रीरामकृष्ण	--	वर्ष ७, अंक ९, आश्विन सं १९८५, पृ० ४०९-४१०
१०-युगावतार भगवान् श्रीरामकृष्ण	--	वर्ष ८, अंक ४, बैशाख सं० १९८५ पृ० १६४-१७०
११-भारत में श्रीरामकृष्णावतार	--	वर्ष १, अंक ५, ज्येष्ठ सं० १९७९ पृ० २१६-२२४
१२-वेदान्तकेसरी स्वामी विवेकानन्द	--	वर्ष ८, अंक २, फाल्गुन सं० १९८५, पृ० ६७-८१
१३-जातीय जीवन और श्रीरामकृष्ण	--	चैत्र १९८०
१४-हिन्दी में सांकेतिक लेखन	--	सौर आषाढ़, १९७९
१५-बँगला-हिन्दी भाषा के पारस्परिक उपयोग	--	कार्तिक १९७९
१६-'पथ' नामक कविता	--	वर्ष २, अंक ११, सं० १९८०
१७-विवेकानन्दजी की कविता का अनुवाद	--	वर्ष ८, अंक ८, सं० १९८६
१८-प्रलय या समाधि नामक विवेकानन्दजी की कविता का अनुवाद	--	वर्ष ३, अंक २, सं० १९८०
१९-माया और जलद	--	पौष, १९७९, पृ० ५५०
२०-पुस्तक-परिचय	--	सौर अग्रहायण, सं० १९८०, पृ० १३९
२१-आदर्श साहित्यिकता	--	सौर ज्येष्ठ सं० १९८२, पृ० ५०९
२२-सागर के वक्ष पर	--	भाद्रपद, सं० १९८६, पृ० ३६९

कविता/निबन्ध		वर्ष, अंक, सन्, पृ०, सं०
२३–श्रीरामकृष्ण के उपदेश (सम्पादकीय),	--	ज्येष्ठ सं० १९७९, पृ० १९३

....

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि 'समन्वय' ने निराला की चेतना को एक दार्शनिक गरिमा प्रदान की जिसकी सम्यक् झलक उनके साहित्य में बराबर देखने को मिलती है। उनके उक्त पत्रिका में प्रकाशित लेख और कविताएँ उनकी दार्शनिक चेतना की ज्वलन्त उदाहरण हैं।

निराला-संपादित पत्र : 'मतवाला'

हिन्दी-पत्रकारिता के उन्नयन की दृष्टि से सन् १९२० में कलकत्ता में हुए काँग्रेस अधिवेशन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस अधिवेशन से हिन्दी की चर्चा राष्ट्रभाषा के रूप में होने लगी। डॉ० रामरतन भटनागर ने लिखा है कि राजनीतिक पत्रकारिता में यहीं से एक नये युग का आरम्भ होता है।[1] बाबू शिव प्रसाद गुप्त ने बनारस से ५ सितम्बर १९२० से 'आज' के प्रकाशन का आरंभ किया। गुप्तजी का उद्देश्य इस पत्र को लंदन के 'टाइम्स'-जैसा प्रभावशाली पत्र बनाने का था।[2] तत्कालीन हिन्दी-पत्रकारिता की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उस युग में साहित्यिक पत्रकारिता राजनीतिक पत्रकारिता से पृथक् हो गई थी।

१९२० के इस पत्रकारिता-युग में एक वयस्क सेठ ने इलाहाबाद के उस समय के सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक महावीरप्रसाद द्विवेदी को पत्र लिखा कि वह उनकी सेवा में उपस्थित होना चाहता है और उनके स्नेह-मंडप के नीचे निश्चिन्तता से बैठ कर हिन्दी-पत्रकारिता का प्रशिक्षण पाना चाहता है। उस तपस्वी साहित्यकार का उत्तर आया कि पहले अपना एक लेख, एक अनुवाद, एक स्वरचित कविता भेजो, उसके बाद प्रयाग की यात्रा करने का निर्देश दिया जायेगा। वैसे उस समय प्रयाग की यात्रा पिण्डदान करने मात्र के लिए हुआ करती थी। यह वयस्क सेठ जीते जी अपने पितरों का पिण्डदान कर देना चाहता था, अर्थात् धन कमाने का धन्धा भूलकर कष्टसाध्य साहित्यिक गरीबी का धन्धा अपनाना चाहता था। इसके बाद सेठजी ने अपना एक लेख भेजा, अपना एक अनुवाद भी तैयार किया और अपनी एक कविता भी साथ में भेज दी, जिसकी अंतिम पंक्ति इस प्रकार थी :

---

१. ए हिस्ट्री ऑव् द प्रेस इन इण्डिया : एस० नटराजन्, पृ० १९०—१९१

२. समाचार-पत्रों का इतिहास : अम्बिकाप्रसाद बाजपेई, पृ० ३१३

कुछ नहीं हम चाहते इसके सिवाय ।
तुम जरा हँस दो हमारे सामने ।।

अपनी साहित्यिक रुचि की योग्यता का प्रमाण तो भेजने के लिए भेज दिया, लेकिन वयस्क होते हुए भी सेठ सहसा प्रयाग प्रस्थान के लिए तैयार नहीं हुए। उसका अपना कारोबार कलकत्ता में था। उसकी इच्छा यह तय नहीं कर पा रही थी कि वह प्रयाग जा कर, कुछ अर्थों में द्विवेदीजी की रूढ़ पत्रकारिता की दीक्षा ले या अपनी इच्छा का नया पत्र कलकत्ता से निकाले। इस सेठ का नाम था महादेवप्रसाद ।

सेठ महादेवप्रसाद ही 'मतवाला' के संस्थापक-सम्पादक थे। सेठजी का एकाएक परिचय निराला से हुआ। वे उनकी बुद्धि-क्षमता से प्रभावित हुए। उन्होंने निराला के ऊपर 'मतवाला' के सम्पादन का भार डाल दिया। निराला भी साम्प्रदायिक तथा नीरस पत्र 'समन्वय' का सम्पादन छोड़कर 'मतवाला' में आ गये। निराला ने 'सुकुल की बीबी' में उस समय का स्मरण इस प्रकार किया है – "बहुत दिनों की बात है। तब मैं लगातार साहित्य-समुद्र-मंथन कर रहा था। पर निकल रहा था केवल गरल। पान करने वाले अकेले महादेव बाबू। शीघ्र रत्न और रंभा के निकलने की आशा से अविराम मुझे मथते जाने की सलाह दे रहे थे यद्यपि विष की ज्वाला महादेव बाबू की अपेक्षा मुझे ही अधिक जला रही थी, फिर भी मुझे एक आश्वासन था कि महादेव बाबू को मेरी शक्ति पर मुझसे भी अधिक विश्वास है। इसी पर वेदान्त-विषयक एक नीरस साम्प्रदायिक पत्र का सम्पादन का भार छोड़कर मनसा-वाचा-कर्मणा सरस कविता-कुमारी की उपासना में लगा।"[१] 'मतवाला' से मेल खानेवाला 'निराला' नाम रखा गया। इस 'निराला' नाम की आड़ में उनका 'सूर्यकान्त' नाम छिप गया।

'मतवाला' के प्रकाशन की प्रेरणा बँगला-साप्ताहिक पत्र 'अवतार' से मिली थी। यह हास्य रस का प्रमुख पत्र था। हिन्दी में ऐसा कोई दूसरा पत्र नहीं था। इस अभाव की ओर कलकत्ता के तत्कालीन हिन्दी-हितैषियों का ध्यान गया। इसमें प्रमुख थे - मुंशी नवजादिक लाल, पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी, बाबू शिवपूजनसहाय और बालकृष्ण प्रेस के मालिक महादेवप्रसाद सेठ। बालकृष्ण प्रेस में इन लोगों की बैठकें होती थीं।

१. सुकुल की बीबी : निराला

बँगला 'अवतार' पढ़कर इन लोगों को प्रेरणा मिली, जिसकी चर्चा आचार्य शिवपूजनसहाय ने अपने संस्मरणों में इस प्रकार की है - "सोचावट होने लगी- इसी ढंग का एक पत्र हिन्दी में निकाला जाए। रोज हर घड़ी चर्चा छिड़ी ही रहती थी। कितने ही हवाई किले बने और कितने ही उड़ गये। बहुत मन्थन के बाद विचारों में स्तम्भन आया। उसी दम बात तय हो गयी। बीजारोपण हो गया।

"ता० २० अगस्त, १९२३ ई० रविवार को सिर्फ बात पक्की हुई। तब २१ सोमवार को मुन्शीजी ने ही पत्र का नामकरण किया - 'मतवाला'। मुंशीजी को दिनरात इसी की धुन थी। नाम को सबने पसन्द किया। अब कमिटी बैठी। विचार होने लगा - कौन क्या लिखेगा? - पत्र में क्या रहेगा ? इत्यादि। निराला- जी ने कविता और समालोचना का भार लिया। मुंशीजी ने व्यंग्य-विनोद लिखना स्वीकार किया।

"मैं चुप था। मुझमें आत्माविश्वास ही नहीं था। बैठा-बैठा सब सुन रहा था। सेठ जी भंग का गोला जमाये सटक गुड़गुड़ा रहे थे। मुझसे बार-बार पूछा गया। डरते-डरते मैंने कहा मैं भी यथाशक्ति चेष्टा करूँगा। सेठजी ने कहा- 'आप लीडर (अग्रलेख) लिखियेगा, प्रूफ देखियेगा जो कुछ घटेगा सो भरियेगा।'

मुँशीजी और सेठजी तैयारी में लग गये। स्तम्भों के शीर्षक चुने गये। डिजाइन, ब्लाक, कागज, धड़ाधड़ प्रेस में आने लगे। चारु बाबू चित्रकार ने मुखपृष्ठ के लिए 'नटराज' का चित्र बनाया। देखकर सबकी तबीयत भड़क उठी। निरालाजी ने कविता तैयार कर ली - समालोचना भी लिख डाली। मुंशीजी भी रोज कुछ लिखते जाते थे। मैं हतबुद्धि हो गया। कुछ सूझता ही न था। श्रावण की पूर्णिमा ता० २६ शनिवार को पड़ती थी। उस दिन 'मतवाला' का निकलना सर्वथा निश्चित-सा था। युवती दुलहिन के बालक पति की तरह मेरा कलेजा धुकधुका रहा था।"

"कुछ मैटर प्रेस में जा चुका था। उसका प्रूफ भी मैं देख चुका था। अब उत्साह बढ़ने पर मैंने कुछ 'बहक' और 'चलती चक्की' लिखीं। श्रावणी संवत् १९८० शनिवार (२३ अगस्त, १९२३ ई०) को 'मतवाला' का पहला अंक निकल गया। था तो साप्ताहिक मगर मासिक पत्र की तरह शुद्ध और स्वच्छ निकला। बाजार में जाते ही पहले ही दिन धूम मच गयी।"[१]

१· शिवपूजन-रचनावली, चौथा खण्ड, : बाबू शिवपूजनसहाय पृ. ११२–११३

इस प्रकार 'मतवाला' के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी-पत्रकारिता के क्षेत्र में एक नये प्रयोग का आरंभ हुआ एक बड़े अभाव की पूर्ति हुई और एक साहित्यिक पत्र का बीज उगा। उसने हिन्दी साहित्य को एक हस्ताक्षर निराला दिया, जो आधुनिक काव्य की महत् उपलब्धि और स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का सबसे बड़ा पुरस्कर्ता सिद्ध हुआ।

'मतवाला' के मुखपृष्ठ पर निराला की कविता छपती थी। पत्र के नियमादि भी मुखपृष्ठ पर ही होते थे। पहले अंक के पहले पृष्ठ को उद्धृत किया जा रहा है, जिससे उसकी व्यवस्था की झलक मिल सके :

'आत्म परिचय'

'मतवाला'

साप्ताहिक पत्र

'अमिय-गरल, शशि-शीकर, रविकर, राग-विराग भरा प्याला।
पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह मतवाला॥'

(प्रति प्याला दो पैसा नगद) (वार्षिक बोतल दो रुपया पेशगी)

वर्ष १] कलकत्ता, श्रावणी पूर्णिमा १९८०, रविवार [संख्या १

मेरा पिनल कोड।

(१) प्रति शनिवार को शनैश्चर की तलाश में मैं बाहर निकला करूँगा।

(२) जो लोग दो रुपया डाक-व्यय-सहित सलाना सलामी मेरे पण्डे के पास पेशगी जमा कर देंगे उनके घर ठीक समय पर बिना रोक-टोक सीधे पहुँच जाऊँगा।

'रक्षा–बन्धन'

परिमलयुत मृदु मन्द मलय वह
गुंजत छन-छन मत्त मधुपगन
उठत बीन झंकार चतुर्दिस
चढ़यो मदन जनु करन कतहुँ रन
पन–पिय अधरन चूम चाँदनी
अलस चुवत तन–सुधा–स्वेद कन
प्रकृति–पुरुष कर मिलन मनोहर
अति सुखकर यह 'रक्षा-बन्धन'।

'पुराने महारथी'

बढ़ गई शोभा सखी सावनी सलोनी हुई
बड़े भाग्य भारत के गौरव के गये दिन
आये फिर

(३) नकदागद का पक्षपाती होने के कारण वी० पी० की अपेक्षा मनीआर्डर द्वारा वार्षिक दक्षिणा लेना ही मुझे अधिक पसन्द है। इससे मेरा और मेरे भक्तों का लाभ है।

चेतावनी

(१) लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें और परिवर्तनार्थ पत्र आदि का सम्पादक–'मतवाला और मूल्य तथा प्रबन्ध-संबंधी पत्रादि मैनेजर-'मतवाला' के पास नीचे लिखे पते से भेजना चाहिए—

बालकृष्ण प्रेस, २३, शंकर घोष लेन, कलकत्ता।

(२) कोई मुहर्रमी महाशय 'मतवाला' के लिए लेख भेजने का दुस्साहस न करें।

'रक्षा' से बँधे हैं भारतीयों के कोमल कर
मंगल मनाती क्यों न, रहा क्यों कलेजा चिर
तारों इन सुनहलों के आगे सितारे मात
अथवा प्रकाश रहा बादल-दलों से घिर
देख करतूत ऐसी वीरवर सपूतों की
भारत का गर्व उठेगा या झुकेगा सिर?
कंकालों का कत्ल अहो इस 'राखी' के रंग में छिपा
भूत, भविष्यत्, वर्तमान है दोनों का तीनों लिया।

—'निराला'

विज्ञापन-दर

जो सज्जन एक वर्ष के लिए छपवाना चाहेंगे उनसे प्रति इंच प्रति सप्ताह चार आने के हिसाब छपाई पेशगी ली जायेगी। ६ महीने के लिए उक्त दर का डेढ़ा, तीन महीने के लिए दूना और एक महीने के लिए तिगुना लिया जायेगा एक महीने से कम का विज्ञापन नहीं लिया जायेगा। विज्ञापन की छपाई हर हालत में पेशगी ही ली जायेगी।

मैनेजर–'मतवाला'
बालकृष्ण प्रेस
२३, शंकर घोष लेन, कलकत्ता।

दूसरे पृष्ठ पर सम्पादकीय टिप्पणी रहती थी। सम्पादकीय स्तम्भ के स्वरूप-बोध के लिए एक पूरे पृष्ठ का चित्र, जिसमें एक पूरी सम्पादकीय टिप्पणी है, दिया जा रहा है। सम्पादकीय टिप्पणी का शीर्षक मुख पृष्ठ के शीर्ष पर अंकित रहता था। सम्पादकीय स्तम्भ के अन्तर्गत शीर्षक के ऊपर ही अकबर इलाहाबादी की दो पंक्तियाँ स्थायीरूप से अंकित रहती थीं :

'खींचो न कमानों को न तलवार निकालो।
जब तोप मुकाबिल है तो अखबार निकालो॥'
—अकबर

'मतवाले की बहक', 'चलती चक्की' और 'मतवाले का चाबुक' स्थायी स्तम्भ थे। कभी-कभी 'मतवाले की चुकूड़', 'चण्डूखाने की गप्प' और 'रँगरूटों की फौज' भी प्रकाशित होता था। मुखपृष्ठ के लिए निराला कविता लिखते थे। सम्पादकीय लेख, 'चलती-चक्की' तथा अन्य विनोदपूर्ण टिप्पणियाँ शिवपूजनसहाय लिखते थे। नवजादिक लाल 'मतवाला की बहक' नामक स्तम्भ व्यंग्यात्मक टिप्पणियों से सजाते थे। 'भूतनाथ तेल' का पूरे एक पृष्ठ का विज्ञापन मुन्शीजी (नवजादिकलाल) के कारण सहज ही उपलब्ध हो गया था। समालोचनायें निराला जी लिखा करते थे। प्रूफ-संशोधन तथा पूरी सामग्री के सम्पादन का दायित्व शिवपूजन जी पर था। सम्पादक के रूप में सेठजी का नाम छपता था।

'मतवाला' की व्यवस्था का वर्णन करते हुए बाबू शिवपूजनसहाय ने लिखा है— "प्रेस की व्यवस्था स्वयं सेठजी करते थे और 'मतवाला' का प्रबन्धविभाग मुन्शीजी के हाथ में था। जब 'मतवाला' का प्रबन्ध-सम्बन्धी काम बहुत बढ़ गया, तब मुन्शीजी 'मतवाला की बहक' लिखने के लिए समय नहीं निकाल पाते थे। विवश होकर उन्हें भूतनाथ-कार्यालय की मैनेजरी भी छोड़नी पड़ी। तब भी उन्हें कुछ लिखने का अवकाश नहीं मिल पाता था। इस तरह 'बहक' का बोझ भी मेरे ऊपर आ पड़ा। मुन्शीजी कभी-कभी यथावकाश कुछ लिख दिया करते थे। वे और सेठजी जब अखबार पढ़ने का अवसर पाते तब उसमें निशान लगाकर मेरे पास उस पर टिप्पणी जड़ने के लिए भेज देते थे। 'मतवाला' कार्यालय की तीसरी मंजिल पर एक छोटा-सा एकांत कमरा था। रात में सेठजी उसमें सोया करते थे और दिन भर उसमें 'मतवाला' का मैटर तैयार किया करते थे। शाम को रोज बनारसी बूटी बनती थी। भंग छानने के बाद कुछ घंटे हम लोगों की सम्मिलित बैठक होती थी। उसमें अखबार की खबरों पर विचार-विनिमय होता था। देश, समाज, धर्म और साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाले महत्त्वपूर्ण समाचारों और ज्वलन्त राजनीतिक समस्याओं पर सूझ-बूझ-भरी टिप्पणियाँ लिखने के लिए निश्चय किया जाता था। भंग की तरंग में सेठजी की सूझ-बूझ निराली होती थी। मुन्शीजी स्वाभाविक हास्य-विनोद लिखने में बड़े सिद्धहस्त थे। निरालाजी की कविताओं ने भी 'मतवाला' की प्रतिष्ठा और लोकप्रियता बढ़ाई। उन्होंने 'सरस्वती'

के अंकों की जो समालोचना लगातार लिखी–गरगजसिंह वर्मा के नाम से, उसे पढ़कर आचार्य द्विवेदीजी इतने क्षुब्ध हुए कि 'मतवाला' के एक अंक को आदि से अन्त तक अच्छी तरह संशोधित करके भेज दिया।

'मतवाला' में छपने के लिए बहुत से लोग हास्य-विनोदमयी रचनाएँ प्रायः भेजा करते थे। उनमें से मौके की रचनाएँ चुनकर मैं सुधार-सँवार देता था। ऐसी रचनाओं के लिए 'रँगरूटों की फौज' नामक स्तम्भ बनाया गया था। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक जगत् की जो हवाई खबरें और अफवाहें होती थीं, उन्हें कलमबन्द करने के लिए 'चण्डूखाने की गप' नामक स्तम्भ कायम किया गया था। उससे पाठकों का इतना अधिक मनोरंजन होता था कि देश के अनेक भागों से लोग अपने यहाँ उड़ती खबरें और दिलचस्प अफवाहें लिख-लिखकर भेजा करते थे। हिन्दी-संसार के पत्र-पाठकों में 'मतवाला' ने एक नयी उमंग की लहर पैदाकर दी थी। हास्यरस की ओर लोगों का झुकाव दिन-दिन होता जाता था। नतीजा यह हुआ कि पहले साल के अन्दर ही यह पत्र दस हजार की संख्या में छपने लगा। केवल बनारस में ही एजेण्ट के मार्फत दो हजार प्रतियाँ खपती थीं। कलकत्ता में उसकी इतनी धाक थी कि जिस विषय पर वह लिखना शुरू करता था उस विषय के क्षेत्र में हड़कम्प मच जाता था।"[१]

निरालाजी बाबू शिवपूजनजी की सम्पादकीय टिप्पणियों को देखते थे और अपेक्षित संशोधन भी करते थे। 'मतवाला-मण्डल' में वही भाषा के आचार्य थे, किन्तु मुन्शीजी अपनी लिखी चीजों में किसी को कलम नहीं लगाने देते थे। मुंशी जी पुराने अनुभवी थे, कई अखबारों में रह चुके थे, उर्दू-फारसी के अच्छे जानकार थे, हास्य मँजा हुआ था।"[२]

सेठजी और मुन्शीजी की अनुपस्थिति में मुद्रण-सम्बन्धी सारा काम निराला जी को करना पड़ता था। श्यामसुन्दर खत्री के एक संस्मरण से इस बात की पुष्टि होती है। खत्रीजी ने लिखा है–"एक बार जब मैं 'मतवाला' आफिस में गया, तब देखा, वहाँ सन्नाटा था। पूछने पर पता चला कि बस इस समय सिर्फ निराला जी प्रेस में हैं, मैंने उनके पास खबर भेजी। वे बाहर आये। शिष्टाचार के उपरान्त हम दोनों एक चौकी पर बैठ गये। निरालाजी ने कहा कि मुन्शीजी घर गये हुए हैं और महादेव बाबू भी मिर्जापुर चले गये हैं, इसलिए 'मतवाला' का

---

१. नयी धारा : बाबू शिवपूजनसहाय, जून १९५२ (वर्ष ३, अंक ३)

२. शिवपूजन-रचनावली, चौथा खण्ड, पृ ११३

सारा कार्य-भार मुझी पर आ पड़ा है।"[1] इस प्रकार निरालाजी 'मतवाला' के प्रकाशन में सक्रिय रुचि लेते थे। 'मतवाला-मण्डल' में निरालाजी का विशेष स्थान था। 'मतवाला' में कविता और समालोचना निरालाजी की स्वीकृति पर ही छपती थी। सेठजी और मुन्शीजी उनका जितना आदर करते थे उतना आदर शायद ही किसी साहित्यिक को किसी प्रकाशन से मिल सके।"[2]

इस प्रकार पारस्परिक स्नेह–सहयोग से 'मतवाला' का प्रकाशन होता था। अंक ६ से इसके रूप-विन्यास में किंचित् परिवर्तन यह आया कि मुखपृष्ठ पर नटराज का चित्र छपने लगा।

'मतवाला' में अधिकांशतः व्यंग्य-चित्र प्रकाशित होते थे, जिनमें तत्कालीन परिस्थितियों पर चोट करनेवाले गहरे व्यंग्य होते थे।

'मतवाला' हिन्दी का हास्य-व्यंग्य-विनोद प्रधान साप्ताहिक पत्र था। इसका पूरा आकार-प्रकार विलक्षण था। पहले अंक में सम्पादकीय स्तम्भ के अन्तर्गत 'आत्म-परिचय' प्रकाशित हुआ था, जो एक अद्‌भुत शैली में लिखा गया था। इसके लेखक बाबू शिवपूजनसहाय थे, जो अपने युग के एक विशिष्ट शैलीकार माने जाते थे। उक्त सम्पादकीय टिप्पणी[3] में 'मतवाला' के आविर्भाव-प्रयोजन की विज्ञप्ति दी गयी है। इसी की अन्तिम पंक्तियाँ उद्धत की जाती हैं जिसमें 'मतवाला' के उद्देश्य का संकेत है– "मैं अपनी यात्रा की रिपोर्ट नियमित रूप से प्रकाशित करता रहूँगा। उसमें सच्ची और स्वाभाविक सूचना रहेगी। उसके द्वारा मैं यथेष्ट रीति से इस देश की आन्तरिक दशा बतलाऊँगा। लेकिन बतलाने का ढंग निराला होगा। जो मेरी ही तरह स्वतन्त्र 'मत' वाला होगा वही उस ढंग को समझनेवाला होगा। राष्ट्र, जाति, सम्प्रदाय, भाषा, धर्म, समाज, शासन-प्रणाली, साहित्य, व्यापार आदि समस्त विषयों का निरीक्षण संरक्षण ही मेरी योजना का अभिसंधान है। मैं उसे पूरा करने के लिए संकोच, भय, ग्लानि, चिन्ता और पक्षपात का उसी प्रकार त्याग कर दूँगा जिस प्रकार यहाँ के नेता निजी स्वार्थ का त्याग करते हैं।"

'मतवाला' में विविध छद्‌मनामों से लेख तथा सम्पादकीय टिप्पणियाँ प्रकाशित होती थी,' जिनकी सूची अधोलिखित है :

---

१. निराला-अभिनंदन-ग्रंथ : श्यामसुन्दर खत्री, पृ० ४३

२. वहीं : बाबू शिवपूजनसहाय, पृ० ३१

३. 'मतवाला' के प्रथम अंक की सम्पादकीय टिप्पणी आगे प्रस्तुत की गयी है।

चाबुक--श्रीमान् गरगजसिंह वर्मा, साहित्य शार्दूल
रक्षाबन्धन (१) -- पुराने महारथी
कहानी--क्या देखा-- जनाबआली (अंक ५)
कसौटी स्तम्भ आलोचना-- हथियार
वसंत के प्रति--एक छाया कीट
शौहर (अंक ११)

'चाबुक स्तम्भ निरालाजी की पत्रकारिता की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें वे गरगजसिंह वर्मा 'सहित्य-शार्दूल' नाम से सम्पादकीय टिप्पणी लिखते थे। इन टिप्पणियों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं:

"आजाद साहब ने आजादी के साथ फरमा दिया कि दाढ़ी और चुटिया के गठबन्धन पर अक्षत, गंगाजल और सुपारी का संकल्प छोड़ दो।"[१]

"हिन्दू क्या हैं? मोम के पुतले? लाह की बत्ती। कच्चे धागे हैं। शीशे के खिलौने हैं। --- कहीं चुल्लू भर पानी भी नहीं मिलता ---।"[२]

'मतवाला' में प्रकाशित ये टिप्पणियाँ 'चाबुक' में संगृहीत हैं। यह व्याकरणिक आलोचना 'यथार्थता लिए हुए, जितनी भी हो, कटुता लिए हुए अवश्य थी' ('चाबुक': निवेदन)। प्रमाण के लिए इसी स्तम्भ में प्रकाशित 'विजयाह्वान' शीर्षक कविता पर एक टिप्पणी अवलोकनीय है – आजकल के तुवकड़ तो बस अनुप्रास की पूछ पकड़कर कविता-वैतरणी से पार होते हैं, भाषा और भावों पर चाहे पत्थर ही पड़ें।

"-तुकबन्दी के लिए तुम्हें हम धन्यवाद देते कविराज,
किन्तु प्रार्थना, कवि जी! रखना भाषा भावों की भी लाज।"[३]

उपर्युक्त टिप्पणियाँ उस समय के साहित्यिक विवादों एवं निरालाजी के मनोभावों के विश्लेषण की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। निरालाजी उस समय की प्रकाशित विभिन्न पत्रिकाओं विशेषतः 'सरस्वती,' 'माधुरी' में प्रकाशित रचनाओं के व्याकरणिक दोषों को दिखाने में बड़ी रुचि से काम लेते थे। उदाहरणस्वरूप 'माधुरी' में छपे 'लाहौर' नामक लेख का एक वाक्य और उस पर निराला की टिप्पणी को देखा जा सकता है:

---

१. 'मतवाल', २२ सितम्बर १९२३
२. 'मतवाल', १५ सितम्बर १९२३
३. 'मतवाल', १६ अगस्त, १९२३, 'चाबुल' पृ० १२२

पुरातन काल से चली आने वाली लाहौर ने --।' (मूल) टिप्पणी - श्रीमती लाहौर के पैर बड़े मजबूत हैं --- कहीं बैठी भी नहीं।--इस तरह मनमानी चाल न चलें, क्योंकि इस बन में बबूर के काँटों की कमी नहीं --।' ('चाबुक,' पृ० १२०)

इसी तरह पं० रूपनारायण पाण्डेय के बँगला-हिन्दी अनुबादों, श्री माखन-लाल चतुर्वेदी के 'झाड़ पड़ना' आदि मुहावरों और रामचरित उपाध्याय के 'भी' तो में आदि विभक्ति-प्रयोगों को निर्दिष्ट कर लिखी गई टिप्पणियाँ द्रष्टव्य हैं :

'--अगर ऐसा लिखते--कोरम पूरा (भी निरस्त) होता है तो भी अधि-कांश मेम्बर नहीं आते। तो भला सम्पादन कला की १६ नहीं ६४ कलाओं में से कितनी कलाएँ घट जातीं ---।' ('चाबुक', पृ० ११९)

निराला की तरह ही शिवपूजनसहाय, नवजादिक लाल तथा अन्य लेखकों भी छद्मनाम से ही लिखते थे। जहाँ पर तीन लेखक से तेरह लेखकों का काम लेना हो - वहाँ यह दिखाने के लिए कि पत्र को बहुत से लेखकों का सहयोग प्राप्त है - छद्मनाम के बिना काम नहीं चल सकता। 'निराला' कवि के उपनाम से अधिक छद्मनाम था। 'मतवाला' में विविध छद्मनामों से प्रकाशित लेखों का कारण उपर्युक्त ही था।

'मतवाला विशुद्ध राष्ट्रीय पत्र था। 'मतवाला-मण्डल' के सदस्यों ने सात्या-ग्रह आन्दोलन का समर्थन किया था। गाँधीजी के प्रति ये लोग सहज श्रद्धा रखते थे। किन्तु उनमें हिन्दुत्व का भाव भी कम न था। तात्पर्य यह कि हिन्दू मुसलिम एकता के प्रश्न पर वे गाँधीजी की शान्तिावादी नीति के पक्ष में नहीं थे। इस तरह इस पत्र की प्रकृति पूर्ण स्वच्छन्द और स्वतन्त्र थी। यह पत्र किसी व्यक्ति, नीति, दर्शन और सम्प्रदाय के प्रति संवेदनशील नहीं था।

चूँकि यह हास्य और व्यंग्य का पत्र था, इसलिए उसे कड़ी से कड़ी बात विनोद के स्वर में कहने की छूट प्राप्त थी। हास्य और व्यंग्य के आवरण में लिपटी उसकी टिप्पणियाँ अनुचित पर मार्मिक प्रहार करती थीं। इस दृष्टि से वह किसी के प्रति संवेदनशील नहीं था। वह बड़ी निर्भीकता से अन्याय और अनीति पर प्रहार करता था। 'मतवाला-मण्डल' के प्राय: सभी सदस्य स्वच्छन्द स्वभव के व्यक्ति थे और उन पर किसी तरह का प्रकाशकीय अंकुश नहीं था, इसलिए वे निर्भीकतापूर्वक अपनी बात कहते थे।

'मतवाला' के संचालक श्री सेठजी स्तम्भ-लेखकों या सम्पादकों सहृदय मित्र थे। सभी उन्मुक्त ढंग से अपने दायित्व का पालन करते थे। किसी के ऊपर किसी तरह का मानसिक प्रभार भी नहीं था सेठजी मतवाला-परिवार के सदस्यों के साथ एक परिवार का-सा व्यवहार रखते थे। सेठ जी ने 'मतवाला–मण्डल' के सदस्यों के प्रति आभार प्रकट करते हुए (वर्ष २, अंक १ में) लिखा था–'सर्वप्रथम उल्लेख योग्य हैं हिन्दू-भूषण बाबू शिवपूजनसहाय। वे वास्तव में हिन्दी-साहित्य के भूषण हैं। इन्होंने इस जाँच को सफल बनाने में जिस अथक परिश्रम और विलक्षण बुद्धि-विवेक का परिचय दिया है, उसे दृष्टि में रखते हुए हम यह बिना किसी प्रकार की अत्युक्ति के कह सकते हैं कि यदि इनका सहयोग प्राप्त न हुआ होता तो यह जाँच हजार चेष्टा करने पर भी अधूरी ही रहती। साथ ही हम अपने मित्र पण्डित श्री सूर्यकान्तजी त्रिपाठी 'निराला' (गरगजसिंह वर्मा) के भी बड़े उपकृत हैं, जिन्होंने जाँच की रिपोर्ट तैयार करने में बड़ी निपुणता से, अपनी 'कसौटी' पर कसकर खरे-खोटे की पहचान बताते हुए हमारी सहायता की है और जो 'चाबुक' चलाने में चौकसी दिखाते हुए हमारे रथ को उस विकट मार्ग से निकालकर मुख्य लक्ष्यपर्यन्त निर्विघ्न खींच लाये है। निराला' नाम से त्रिपाठी-जी ने तो हमारी जो कुछ सहायता की है, वह हमारी इस क्रांतिपूर्ण यात्रा को शान्तिपूर्ण बनाने में यथेष्ट समर्थ हुई है और उसे हम बड़ संतोष के साथ अपने इष्टदेव के आगे रखते है, वही उन्हें इस सच्चे सौहार्द्र का पुरस्कार दे। प्रिय बन्धु 'निराला' की भावमयी कविताओं ने हमें विशेष रूप से तृप्त किया है। उनकी निराली स्वर-लहरी से हम अनेक बार गदगद् हो चुके हैं। उनकी सुधामुखी लेखनी का सुमिष्ट प्रसाद ही हमारी इस साल भर की यात्रा का मधुर सम्बल रहा है। उनके सौजन्य का सहारा पाकर हमें हिन्दी-संसार का साल भर तक एक नवीन सन्देश सुनाने का सौभाग्य प्राप्त रहा है, जिसका हमें गर्व हैं।"

मुंशी नवजादिकलाल की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है, "अपने परम प्रिय मुंशी नवजादिकलालजी श्रीवास्तव को कोटिशः साधुवाद देते हैं, जिन्होंने चुभती हुई चुटकियाँ लिखकर 'मतवाला-मण्डल' की विस्मयजनक विशेषता को प्रत्यक्ष प्रकट किया है। बात-बात में व्यंग्य और विनोद की सृष्टि करना आपकी ही प्रतिभा की करामत है। अत्यन्त आनन्द का विषय है कि आप जैसे विशेषज्ञ हमारे चिर सहचर और दाहिने हाथ हैं।" व्यक्ति वैशिष्ट्य के महत्त्व को स्वीकार करने और उसके प्रति अपेक्षित कृतज्ञता ज्ञापित करने का यह उदाहरण आज दुर्लभ है जो 'मतवाला' के संचालक श्री महादेवप्रसाद सेठजी की एक बड़ी विशेषता थी।

यह पत्र यथार्थ जीवन-जगत् का चित्रण करनेवाला था यह उस 'गोरखधन्धे' का खुल्लमखुल्ला विरोध करता था जो उस समय देश के अन्दर एक संक्रामक रोग की तरह फैला हुआ था। एक सम्पादकीय टिप्पणी में उस गोरखधन्धे की चर्चा इस प्रकार की गयी है :

"साहित्य में तो विचित्र धाँधली मची हुई है। विशुद्ध साहित्य सूली पर चढ़ाया जा रहा है। भ्रष्ट साहित्य पालने पर झूल रहा है। राष्ट्रीय पोथियाँ जब्त हो रही हैं, गन्दे उपन्यासों का प्रचार बढ़ रहा है। सच्चे इतिहास के मुँह में कपड़ा ठूस दिया गया है, मिथ्या इतिहास सरे बाजार गला फाड़कर चिल्ला रहा है। यथार्थवादी पत्र लोहे के चने चबा रहे हैं, 'हाँ हुजूर' वाले बराबर हलवा गपक रहे हैं। लेखकों के छक्के-पंजे भूल गये हैं, प्रकाशकों का पौबारह है। जो पत्रिकायें सादगी से रहकर पवित्र जीवन बिताती हैं, उनकी ओर ताकते भी नहीं, मगर नखरे तिल्लें वाली पुश्चली पर लोग लट्टू हुए जाते हैं। अजीब गोरख-धन्धा है।"

'मतवाला' एक जाग्रत पत्र था। युग की नाड़ी की उसे सही पहचान थी। युगीन परिस्थितियों के प्रति वह सदैव जागरूक रहता था। तत्कालीन राजनीतिक परिवेश का एक चित्र अवलोकनीय है :

"राजनीतिक परिस्थिति में उथल-पुथल मचा हुआ है। वह निराश और दुविधा की बीहड़ घाटियों में भटक रही है। दलबन्दियाँ सिर उठा रही हैं। असहयोग शक्ति की कमर टूट गयी। आत्मविश्वास कलेजा थामकर बैठ गया। धैर्य की नाड़ी छूट गयी है। साहस के पैर उखड़ चुके हैं। उत्साह बगलें झाँक रहा है। चरखा सिर धुन रहा है। खद्दर का दम घुट रहा है। अहिंसा की कातर दृष्टि शून्य आकाश से जीवन की भिक्षा माँग रही है। दासता की आँखों में चरबी छा गई है। नौकरशाही की पाँचों अँगुलियाँ घी में हैं। दाढ़ी और चुटिया में गाँठ पड़ गयी है। एकता रँडापा झेल रही है। दाढ़ीवालों के पेट में दुगुनी लम्बी दाढ़ी है और चोटीवालों के पीछे चोटी से भी लम्बी दुम।"

ऊपर यह बताया जा चुका है कि 'मतवाला' हास्य-व्यंग्य का एक साहित्यिक पत्र था। छायावाद युग के अनेक लेखकों का उसे सहयोग प्राप्त था। साहित्यिक दृष्टि से उसका ऐतिहासिक महत्त्व यह है कि निरालाजी की कविताओं को अन्य पत्रिकाओं में स्थान नहीं मिलता था या कठिनाई से मिलता था।

'मतवाला' ने उन्हें शीर्ष प्रस्तुति दी और इस प्रकार वह निराला की प्रतिष्ठा का एक सशक्त माध्यम बना ।

स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रतिष्ठा के ऐतिहासिक उपक्रम को 'मतवाला' ने सम्पन्न किया । हिन्दी-पत्रकारिता के लिए यह सर्वथा नवीन देन थी । साहित्य की दुनिया के लिए भी यह एक क्रान्ति थी जिसके स्वागत की पूरी तैयारी अभी नहीं हुई थी । 'मतवाला' जैसा सशक्त माध्यम और महादेवप्रसाद सेठ-जैसे उदार मित्र यदि निराला को न मिले होते तो कदाचित् हिन्दी-जगत् पर निराला की शक्ति का प्रभाव जमने में अनावश्यक विलम्ब होता ।

वर्ष १, अंक ३ के मुखपृष्ठ पर 'निराला' की एक कविता छपी है – 'गये रूप पहचान' जो यहाँ दी जा रही है :

गये रूप पहचान ।

सुनी राष्ट्रभाषा की जब से भव्य मनोहर तान ।
मिटी मोह-माया की निद्रा गये रूप पहचान ।।

छिपी छुरी नीचों के छल में,
देख दम्भ दुष्टों के दल में,
बढ़ आगे, हो सजग मेट तू क्षण में नाम-निशान ।
मिटी मोह-माया की निद्रा गये रूप पहचान ।।१।।

चूम चरण मत चोरों के तू,
गले लिपट मत गोरों के तू,
झटक पटक झंझट को झटपट झाँके झाड़ में मान ।
मिटी मोह-माया की निद्रा गये रूप पहचान ।।२।।

खल-दल-बल दलदल में धसका,
गो गौरव-गरिमा गुण यश का,
क्या किसका, गर तू उकसाता अपना प्राण महान ।
मिटी मोह माया की निद्रा गये रूप पहचान ।।३।।

आप आप कर अब न अमर को,
बना बाप मत वंचक नर को,

अगर उतरना पार चाहता दिखा शक्ति बलवान।
मिटी मोह-माया की निद्रा गये रूप पहचान ।।४।।

यही 'मतवाला' का अपना स्वर था। क्रान्ति के बदले वह शक्ति की उपासना में अधिक आस्थावान् था। कदाचित् इसी कारण वह गाँधीजी का अधिक दिनों तक साथ नहीं दे सका।

सरकारी दमननीति को परिलक्षित कर वर्ष १, अंक ११ की सम्पादकीय टिप्पणी का एक अंश अवलोकनीय है :

"जो राजा प्रजा को प्रसन्न नहीं कर सकता उसकी उपमा नीतिकारों ने 'अजागलस्तन' से दी है। किन्तु नीति की बातें तो उसके लिए हैं जिसको किसी अंग में कुछ शर्म हो। जिसको शर्म ही नहीं उसके लिए कैसा धर्म और कैसा कर्म? फिर धर्म-कर्म की दुहाई भी कभी उसके सामने जो न्याय का दम भी भरे और न्याय का गला भी घोटें? धर्म-कर्म की दुहाई क्या उसके सामने जिसने मात को 'गजभुक्तकपित्थनृवत' बना डाला? नहीं, हरगिज नहीं, दुहाई कैसी? दुहाई तो कई दहाई तक पहुँच चुकी। अब दुहाई से रिहाई नहीं मिलेगी। अब अगर रिहाई चाहते हो तो अपने अकाली भाइयों के कन्धे से कन्धा भिड़ाकर स्वेच्छाचार और अत्याचार की रबरदार सड़क पर निर्विघ्न चले जाते हुए दमन चक्र की राह में आत्मबल की चट्टान डाल दो। किन्तु सावधान! वह आत्मबल की चट्टान ऐसी हो जिसे तूफानी लहरें भी डिगा न सकें, जिसे प्रलय की आँधी भी हिला न सके, जिसे हत्याकाण्ड का हथौड़ा भी तोड़ न सके, जिस पर तोप के गोले भी पड़कर चकनाचूर हो जायें और जिसकी दृढ़ता से टक्कर खाकर अहंकार-सागर में चला आता हुआ आशा का जहाज चूर-चूर हो जाये। तभी तुम्हारी विजय होगी, तभी तुम्हारी लाली रहेगी, तभी तुम्हारे पवित्र रक्त से सिक्त धूलि का एक-एक कण पुलकित होकर प्रलय-पर्यन्त पुकार-पुकार कर कहता रहेगा कि 'सत्यमेवजयते नानृतम्'।"

'मतवाला' की राष्ट्रीय नीति बहुत उग्र थी। अँगरेजी सरकार की राजनीतिक कुटिल नीति पर वह पैंने धारदार अस्त्रों से आक्रमण करता था। 'मतवाला' की धारणा एकदम सही थी कि अँगरेजों से इस देश को मुक्ति इसीलिए नहीं मिल रही कि हमारा जातीय संगठन अत्यन्त निर्बल है। अँगरेजों से अधिक घातक वे व्यापारी थे जो महात्माजी के राष्ट्रीय आह्वान की उपेक्षा कर देश के शोषण में तल्लीन थे। गोरों को इन काली जोकों को लक्ष्यकर 'मतवाला' वर्ष २, अक ६

की सम्पादकीय टिप्पणी–'गोरों की काली जोकें'–में सम्पादक ने लिखा था— "महात्माजी समझाते-समझाते हार गये, लालजी लेक्चर देते थक गये, मालवीयजी का उपदेश निष्फल हो गया, नेहरूजी के नाकोंदम हो गया, दासयुक्ति तर्क खाक में मिल गया। कोटि-कोटि दरिद्रों का करुण क्रंदन अरण्यरोदन हो गया, हजारों नवयुवक कातर प्रार्थना करके–सत्याग्रह करके-पिकेटिंग करके हताश हो गये, परन्तु गोरों की काली जोकें अपने भाइयों का रक्त चूसने से बाज न आयीं। देश कहते-कहते थक गया, परन्तु रक्तवाहिनी मोरियों का प्रखर प्रवाह न रोक सका।" सारा देश खद्दर-खद्दर चिल्ला रहा है, विदेशी बहिष्कार और स्वदेशी की पुकार मचाकर काँग्रेसवाले नाजुक दिमागों का कान खाये जा रहे हैं। सहयोगी, असहयोगी, स्वराजी और 'हाँ हुजूरी' सभी स्वदेशी के कायल हैं– सभी खद्दर का प्रचार चाहते हैं, देशों की भलाई के लिए देशी व्यवसाय की उन्नति चाहते हैं, परन्तु अर्थ-लोलुप विदेशी वस्तु-व्यवसायी 'छाँड़ि न सकहिं टेक जो टेकी।' देश रसातल की राह ले, जाति का सत्यानाश हो जाए, धरम धरती में धँस जाए, मनुष्यत्व की नानी मर जाए, परन्तु वे अभागे देश-द्रोही अपने स्वार्थ से तिलभर भी नहीं डिगेंगे, खुदा जाने विदेशियों से इनका कौन-सा रिश्ता कायम हो गया है?" अन्त में, सम्पादकीय समाधान दिया गया—"इन हीन चरित्र व्यवसायियों को देशद्रोह के के घोर पाप से बचाने का एकमात्र उपाय चरखा और खद्दर है। भारत के प्रत्येक ग्राम में खद्दर और चर्खे की दुन्दुभी बज जानी चाहिए। –देश की जागृति कभी निष्फल नहीं जाती। गरीबों की पुकार सुनकर भगवान् का आसन भी डोल जाता है। भारत उठेगा, कोटि-कोटि दरिद्रों का रक्त पीकर अकड़ने वाले देशद्रोहियों को उनके कर्मों का फल भोगना पड़ेगा। जोकें चाहे गोरी हों या काली, भारत का रक्त एक दिन उनका पेट फाड़ेगा। साम्यवाद का बीज वपन हो रहा है। सावधान!"

इस प्रकार, राष्ट्रद्रोहियों पर 'मतवाला' की कड़ी दृष्टि रहती थी। चाहे वे किसी वर्ग और जाति के क्यों न हों। यदि वे देशद्रोही हैं, उनके आचरण से देश को या राष्ट्र को किसी प्रकार का कोई खतरा है, उसे 'मतवाला' किसी शर्त पर भी क्षमा नहीं कर सकता था। पहले वर्ष के अंक ३ की सम्पादकीय टिप्पणी का शीर्षक है– 'नीम–गुड़-बटिका'- जिसमें बड़े साफ शब्दों में कहा गया कि "मुसलमान भाई रहते तो हिन्दुस्तान में हैं मगर सपना देखते हैं अरब का ऊँट जब भागता है तो पश्चिम की ओर जाता है। अकबर ने ठीक ही कहा है:

'पेट मसरूफ है क्लर्की में।
दिल है ईरान और टर्की में ॥'

यही कारण है कि वे हिन्दू-संगठन को शनैश्चरी दृष्टि से देखते हैं।' यह 'शनैश्चरी दृष्टि' 'मतवाला' के लिए असह्य थी, क्योंकि वह राष्ट्रीयता का हिमायती था और शक्ति की उपासना में उसकी आस्था थी। अँगरेजों की कुटिल नीति के परिणामस्वरूप हिन्दू-मुस्लिम दंगों का होना आम बात हो गयी थी। दोनों जातियों में संघर्ष बढ़ता जा रहा था। अँगरेज एक को दूसरे के विरुद्ध भड़काते ही नहीं थे, सहायता भी करते थे। उन संघर्षों से अपार जन-धन की क्षति भी होती थी। फलस्वरूप आर्थिक संगठन दुर्बल होता जा रहा था। दोनों जातियाँ एक-दूसरे से अत्यन्त क्षुब्ध थीं, जिसकी यथार्थ अभिव्यक्ति 'मतवाला' की उपर्युक्त सम्पादकीय टिप्पणी में हुई है। इस सम्बन्ध में कुछेक स्थल द्रष्टव्य हैं– "जो लोग प्रेम से मुसलमानों को जीतना चाहते हैं, वे इस दुनिया के जीवों में गिने जाने योग्य नहीं हैं– वे उस लोक के निवासी हैं, जहाँ सत्य की चाँदनी में, दया के शीतल छाया-कुंज में प्रेम और शान्ति लिपट कर सो रहे हैं। स्वराज के पीछे फकीर होनेवाले लोग जबानी भले ही चिल्लाया करें या कुर्सी पर बैठे-बैठे कलम घिस-घिस किया करें, पर जिन बिचारे (?) हिन्दुओं पर बेतरह (?) मार पड़ती है, वे तो भविष्य को भूलकर वर्तमान में ही लीन हो जाते हैं। उन्हें स्वराज तो आगे-पीछे मिलेगा, जान और माल का खतरा तो हर साल सिर पर सवार ही रहता है।

इसी प्रकार वर्ष १, अंक १ की सम्पादकीय टिप्पणी में हिन्दू-संगठन की दुर्बलता का वर्णन किया गया है। चुटिया ने लुटिया डुबो दी' शीर्षक टिप्पणी की आरम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं– "सरकारी रिपोर्ट बतलाती है कि हिन्दुस्तान में इक्कीस करोड़ हिन्दू हैं। भला इस गप्प का भी कुछ ठिकाना है? मर्दुमशुमारी के रिपोर्टरों की आँखों में अँगुली करके कोई दिखलानेवाला होता तो दिखला देता देखो, ये हिन्दू नहीं-हिन्दू की दुम हैं। हिन्दू तो जयचन्द की हराम सूरत देखकर ही यहाँ से उचट कर चले गये। एकाध बार स्नेहवश अपनी सभ्यता की श्मशान-भूमि देखने के लिए प्रताप, शिवाजी और गोविन्द बनकर आये भी, तो जयचन्द की सन्तानों ने अपनी नाक कटाकर उसका सगुन ही बिगाड़ दिया।' उस टिप्पणी का उपसंहार करते हुए सम्पादक ने लिखा "कहने को तो हिन्दू अपने बड़े-बड़ों को भी अपनी गयी बीती सन्तान की मनहूसियत पर शर्म आती होगी। किन्तु इस लम्बी चुटियावालों को तो शर्म छू भी नहीं गयी है। ये तो अपने जातीय संगठन

का मजा करते ही रह गये और इनके 'छोटे भाई बननेवालों ने इन्हें अपने संगठन का मजा कई बार चखा दिया। इतने पर भी इन्हें शर्म थोड़े ही आती है ? अगर इनके किसी अंग में दया होती तो ये अब तक धोबी के पाट नहीं बने रहते—बल्कि भाला खटखटाकर यह जप करते रहते कि 'सौ बार सुनार की एक बार लुहार की'।"

'मतवाला' का यही जातीय दृष्टिकोण था। वर्ष २ संख्या २२ के मुख-पृष्ठ पर 'हिन्दू' शीर्षक से विवेकानन्द की वाणी प्रकाशित हुई है, जिसमें उन्होंने कहा आप अपने को हिन्दू कहने के अधिकारी उसी अवस्था में हो सकते हैं जब 'हिन्दू' शब्द मात्र से आपकी नसों में बिजली दौड़ जाए, जब हिन्दू नामधारी मात्र-चाहे वह इस देश का निवासी हो या विदेशी, आपको आत्मवत् प्रिय प्रतीत होने लगे --ध्यान रहे, यदि आप अपने देश का हित करना चाहते हैं तो आपको गुरु गोविन्द सिंह का अनुगमन करना होगा।" 'मतवाला' की सम्पादकीय नीति पर विवेकानन्द की उक्त वाणी का गहरा प्रभाव दिखायी देता है।

'मतवाला' में अनेक स्थायी स्तम्भ थे, जिनके माध्यम से व्यंग्य, विनोद और हास्य की आड़ में अनौचित्य पर गहरी चोट की जाती थी। यहाँ उक्त स्तम्भों में से कुछ के अंश उद्धृत किये जाते हैं, जिनसे तत्कालीन चेतना और देश की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है:

मतवाले की बहक

"शायद वृद्धावस्था के कारण श्रद्धेय मालवीयजी की बुद्धि सठिया गयी है। इसी से उन्होंने एक ही कुएँ में सब जाति के मनुष्यों को पानी भरने का प्रस्ताव पास होने दिया है। शिव ! शिव ! इस अन्धेर का भी कहीं ठिकाना है ? जब धोबी, पासी, चमार, मेहतर और ब्राह्मण तथा क्षत्रिय आदि एक ही कूप से जल भरने लगेंगे तब हमारे पुराने कूप मंडूक कहाँ रहेंगे "?–(वर्ष १, अंक २)

"देश-सेवा की अपेक्षा विश्व-सेवा निरापद है, क्योंकि देशसेवा का पुरस्कार है जेल और विश्वसेवा का पुरस्कार है 'नोबुल-प्राइज़'। इसी से रवीन्द्र बाबू पहले को छोड़ पिछले को अपनाया है। अन्यान्य लीडरों को भी उनका अनुकरण करना चाहिए।" (वर्ष १, अंक ३)

"२२ जून को सारे भारत में एक अरब ७२ करोड़ ३८ लाख एक हजार आठ सौ २८ रुपये के नोट लोगों के हाथों में चक्कर लगा रहे थे। वाह रे अँगरेजी राज्य। कागज के घोड़े खूब दौड़ाये।"–(वर्ष १, अंक ४)

"बेचारे पं० बनारसीदास बड़बड़ाया करें, मि० ऐण्डरूज रो-रोकर मर जाएँ, महात्मा गाँधी सर पटक दें और भारत के भूत बड़े लार्ड हार्डिंग हाहाकार करते रहें, परन्तु इस देश के कुलियों का विदेश में जाना न रुकेगा। क्योंकि यह अंगेरेजी राज्य का कुफल है।"–(१० नवंबर, १९२३)

मतवाले का चाबुक

"बाबू श्यामसुन्दरदास बी०ए० कोषकार हैं। फिर क्या कहा ? जो कुछ कहें–जो कुछ पास कर दें, वही कोष में सुरक्षित हो जायेगा। खाता न बही, जो आप कहें सो सही।" नागरीप्रचारिणी सभा की वार्षिक रिपोर्ट में आपका 'माधुरी' और 'सरस्वती' की 'होड़ाहोड़ी' का उल्लेख देख' पियक्कड़' घोड़ा-घोड़ी भी हिनहिना पड़े।"–(वर्ष १ अंक २)

"काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा बृहत् कोष में, उसके सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास 'उल्लू सीधा करना' मुहावरे उल्लेख करना बिलकुल भूल गये हैं। इसमें हिन्दीवालों को अपना उल्लू सीधा करने में बड़ी अड़चन पड़ रही है।"

चलती चक्की

"महाराज गायकवाड़ के पुत्र का देहान्त हो गया। खबर है कि महाराज बहादुर पेरिस में अंत्येष्टि क्रिया करेंगे किन्तु चिताभस्म भारतवर्ष भेज देंगे। महाराज की इस स्वदेश भक्ति पर कहीं सरकार की नजर न लग जाए।" (वर्ष १, अंक २)

"तेजस्वी 'तेज' ने ओजस्वी शब्दों में लिखा है कि दिल्ली से कुछ ही दूर एक गाँव में डिप्टी-कमिश्नर साहब बहादुर की आज्ञा से एक बुढ़िया का झोपड़ा फूँक डाला गया। जरा क्या हुआ ? अब तक न जाने कितने डिप्टी–कमिश्नरों ने अनेक घर फूँक तापे हैं। कृपा करके भारत सरकार विलायत की सरकार को सूचना दे दे कि जिन लोगों को इंग्लैंड में अधिक सर्दी मालूम हो वे दया करके भारत चले आवें। यहाँ फूँक तापने लायक गरीबों के असंख्य झोपड़े हैं।"

चण्डूखाने की गप' 'ले०श्रीयुत युधिष्ठिर'

"सुनते हैं 'सी०आर० दासीदल' की जीत की खुशी में वाजपेयीजी भी नाचेंगे और पं० झाबरमलजी शर्मा पीछे से तबला ठोकेंगे।" (वर्ष १, अक ४)

"पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी के विशेष अनुरोध से लाला भगवानदीन 'दीन' ने आगामी हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति बनना स्वीकार कर लिया है।"

अंक छह में 'अमारा आजायब घर' [दुलहिनों का भेड़िया धसान] शीर्षक एक स्तम्भ है, जिसमें विभिन्न पत्रों की विलक्षण खबरें संकलित की गयी हैं।

'मतवाला' की सामाजिक दृष्टि प्रगतिशील थी। कुसंस्कार, रूढ़ियों और अन्धविश्वासों पर वह बड़ा तेज व्यंग्य करता था। हिन्दुत्व का हिमायती होते हुए भी उसकी नीति साम्प्रदायिक नहीं थी। 'मतवाला' इस दृष्टि से स्वामी विवेकानन्द के अधिक निकट था। सामाजिक कलुष-प्रक्षालन की ओर उसका ध्यान सदैव रहता था। बाहरी शत्रुओं की अपेक्षा अपनी ही जाति के शत्रुओं से अधिक खतरा था। 'मतवाला' का यह अटूट विश्वास था। इसी आधार पर उसने तारकेश्वर के तत्कालीन महंत सतीशगिरि के पापाचारों का परदाफ़ाश किया था। महन्तजी का पाप पराकाष्ठा पर पहुँच गया था और जातीय चारित्र्य को कलंकित कर रहा था। इस ओर महापुरुषों का ध्यान गया था और महन्त के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ हुआ था। २४ मई, १९२४ के 'मतवाला' की सम्पादकीय टिप्पणी का विषय यही है। आन्दोलन की चर्चा करते हुए सम्पादक ने लिखा—"हिन्दुओं के सौभाग्य और भगवान् शंकर की असीम अनुकम्पा से तारकेश्वर में सत्याग्रह की प्रचण्ड आग धधक उठी है। वीर संन्यासी स्वामी शिवानन्द और वयोवृद्ध स्वामी सच्चिदानन्द की अध्यक्षता में गत मंगलवार से यह शुभ अनुष्ठान, यह महान धर्मज्ञान—यह कलयुगी नरमेध प्रारम्भ हो चुका है।---सुनते हैं इस धर्म—संग्राम में फील्ड मार्शल' का पद ग्रहण करने के लिए संयुक्त प्रांत के कोहनूर 'पण्डित जवाहरलाल नेहरू बुलाये गये हैं। पण्डितजी नौजवान हैं और भारत के अधिकांश नौजवानों पर आपका प्रभाव है। आपके 'कन्ट्रोल' में यह धर्मयुद्ध सुचारु रूप से सचालित होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।"

इसी तरह इस पत्र ने अछूतोद्धार आन्दोलन का खुलकर समर्थन किया था। सम्पादकीय टिप्पणी (१९ अप्रैल, १९२४) की अन्तिम पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—"भाइयों जड़ता छोड़ो। अपने महान् धर्म की उदारता पर ध्यान दो। अपने बिछुड़े हुए भाइयों को गले लगा लो। जिन्हें तुम अछूत समझ रहे हो, वे तुम्हारे जाति-देह के अंग हैं। यदि अपने शरीर को अविकल रहने देना चाहते हो तो उन्हें अपने से अलग न होने दो।" इस तरह 'ममवाला' सामाजिक दृष्टि से प्रगतिशील विचार-धारा के साथ था।

साहित्य-जगत् के मौलिक चिन्तनशील सांस्कृतिक प्रेक्षक युगानुसार सहृदय या कठोर हो जाया करते हैं। 'मतवाला' के निकलने से पहले कलकत्ता से अनेक पत्र प्रकाशित हो चुके थे। लेकिन ये पत्र अधिकांशतः राजनीतक उद्देश्य को लेकर निकले थे। ऐसी स्थिति में यह सम्भव नहीं था कि ब्रह्म-प्रकाश फैलेगा और ब्रज-भाषा-युक्त हिन्दी का अनियमित अंधकार दूर हो सकेगा। ऐसी दशा में आश्चर्य नहीं कि उसके 'चाबुक' स्तम्भ के अन्तर्गत प्रसिद्ध आचार्यों की भाषा की भूलों को जनता के मनोरंजनार्थ पेश कर उसका सुधरा रूप सामने लाया गया। निरालाजी कवि होने के साथ-साथ व्याकरण के मँजाव में कितनी अधिक रुचि रखते थे और उनका पत्रकार-रूप कितना अधिक मजेदार था,इसके प्रमाण में 'चाबुक' नामक स्तम्भ से सम्पादकीय टिप्पणी उद्धृत की जा रही है निरालाजी इसमें चिंतनशील प्रयोक्ता के रूप में प्रकट होते हैं :

"जिन पत्रों को कोई कौड़ी मोल भी नहीं पूछता, उनके सम्पादक पत्र की प्रसिद्धि के लिए किसी प्रतिष्ठित पत्र या किसी प्रतिष्ठित मनुष्य के विरोध में लिखना आरम्भ कर देते हैं। उसके सम्पादक भी अब उक्त नीति पर कलम चलाने का दुस्साहस कर रहे हैं। उसके सम्पादक हैं कोई स्वामी नारायणानन्द सरस्वती। आप 'स्वामी' भी हैं और 'सरस्वती' भी हैं। आपके 'स्वामीत्व' का पता आपके विकारग्रस्त लेख और भंद्दी तुकबन्दियाँ देती हैं और 'सरस्वतीत्व, का पता 'कवीन्द्र' का प्रथम अंक-विशेषतः उसका 'चेतानाम्'। अतएव आपके पाण्डित्य के विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं। अपने पत्र के तीसरे अंक की टिप्पणियों में जो वाहियात बातें लिखी गयी हैं, उन पर विशेष कुछ लिखना अपने ही वक्त को नष्ट करना है। एक जगह आपने लिखा है– "जैसे योग-साधक जरा भी असावधानी करने से अपने प्राणों तक पर आफत लाद लेता है, ठीक उसी प्रकार यदि छायावाद की कविता सिद्ध न हुई तो वह कवि महाशय को भी ले डूबेगी।" "तो वह भी कवि महाशय को ले डूबती है, न लिखकर आप व्याकरण को ले डूबे। बीसियों जगह 'छायावाद की काव्य : छायावाद की काव्य' लिख मारा है।"

'मतवाला' की साहित्यिक उपलब्धि के रूप में निराला का नाम उल्लेखनीय है। निराला के पूर्ववर्ती काव्य के प्रकाशन का श्रेय 'मतवाला' को ही है। उसका यह सबसे बड़ा साहित्यिक योगदान है। "मतवाला' में निरालाजी का वह लेख तूफान बनकर आया था जिसने कामदेव के बाण से विद्ध पुष्पों की पंखुड़ियों को दूर तक बिखेर आया हो और जहाँ-जहाँ वे जा बिखरीं-वहीं रति का उल्लास और तरुणाई

की चपलता उद्‌भासित हो गयी थी। महाकवि के नये काव्य-प्रयोग से हिन्दी की आत्म-निर्बलता प्राणवान् हो उठी। नवजीवन के उस संचार के साथ ही नये-नये युवक साहित्य के क्षेत्र में नई आकांक्षा लेकर आये। निरालाजी की कविताओं से उन्हें विषय-वस्तु का एक नया मार्ग मिला। अनेक लेखकों के अवरुद्ध उच्छ्वास नई गंगोत्तरी की तरह फूटकर वह निकले। इनमें एक लेखक थे श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी। वे उन दिनों कलकत्ता साहित्य की सेवा करने और कुछ काम खोजने आये थे। इस प्रकार प्रकट है कि 'मतवाला' ने निराला के भाषा-संस्कार और युग-प्रवर्तक रूप के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।"[१]

एक वर्ष तक निराला ने 'मतवाला' के माध्यम से जो कार्य किया ,उन्हें इस प्रकार देखा जा सकता हैं :

१. श्रेष्ठ कविताओं का सृजन और 'अनामिका' का प्रकाशन

२. हिन्दी के महान् आचार्यों, साहित्यिकों और लेखकों के सर पर जो उनकी प्रांतीय बोलियों का भूत सवार था उनकी जमकर खबर ली गई और सभी क्षेत्रों में इस वैयाकरण की आलोचनाओं का स्वागत किया गया तथा उसकी ईमानदारी की दाद दी गई।

३. उस समय कलकत्ता में ऐसी पारसी थियेटर कंपनियाँ काम कर रही थीं जिनके असंबद्ध और असंगत नाटकों से जनसामान्य की साहित्यिक अभिरुचि विकृत हो रही थी। उन्होंने उसके विरुद्ध जोरदार आन्दोलन चलाया और उसमें सफलता भी मिली।

४. १९२४ में दिल्ली के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में भाग लिया। सेठ महादेवप्रसादजी जब वहाँ गये तो साथ में अपने एकमात्र प्रिय कवि को भी साथ लेते गये। इस अधिवेशन के सभापति पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' थे। निरालाजी ने इस अधिवेशन में मुक्त छन्द पढ़ा और वन्दना-गीत गाया।

५. अतिरिक्त बीस पुस्तकों का प्रणयन किया।

६. बँगला-साहित्य के सम्मोहन से अपने को कतई अलग कर हिन्दी साहित्य में प्रवृत्त हुए।

७. ब्रजभाषा की रीति-परंपरा का, जिसका अंत देश की आजादी की लड़ाई को देखते हुए अनिवार्य रूप से हो जाना चाहिए था, खुलकर उन्मूलन किया।

---

१. दूसरी जेमिनी-पुस्तक 'कलकत्ता के हिन्दी-पत्रकार', पृ० ८७—८८

८. नये कवियों को हिन्दी गद्य लिखने के लिए उत्साहित किया और उन्हें अतुकान्त छन्द में निर्भीक भाव से काव्य-लिखने की प्रेरणा दी

९. नाटकों के भाँड़ों और मुंशियों की तर्ज पर लिखे जाने वाले अश्लील हास्य के स्थान पर सामाजिक शिष्ट मजाक लिखने की नींव डाली।

१०. साहित्यिकों के आदर्श तपस्वी जीवन की परंपरा का पुनरुद्धार किया।

इस प्रकार सिद्ध है कि 'मतवाला' के विकास के लिए निरालाजी द्वारा की गई तपस्या अनुपम एवं अभूतपूर्व है।

निराला ने 'मतवाला' के माध्यम से ही सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि अनेक क्षेत्रों में क्रांति की घोषणा की है। इसी पत्र के माध्यम से उन्होंने मुक्त छन्द की प्रतिष्ठा भी की थी। इसी के द्वारा मृत परम्पराओं के संवाहक महारथियों से लोहा लेकर युगान्तर भी उपस्थित किया था। अतः 'मतवाला' एक ऐसा पत्र है जो निराला के क्रांतिकारी एवं युगान्तरकारी साहित्य के स्वरूप का महत्त्वपूर्ण परिचय कराता है जिसके अनुशीलन के बिना उनके उस स्वरूप से ससंदर्भ और सम्यक् रूप से अवगत होना कठिन होगा।

'मतवाला' की निराला-लिखित सम्पादकीय टिप्पणियों और कविताओं की सूची यहाँ दी जा रही है। अध्याय के आरंभ में 'मतवाला' की विशेषताओं की चर्चा करते हुए यह बताया गया है कि उसके मुख पृष्ठ पर 'निराला' की कविता छपती थी और उनका पूर्ववर्ती काव्य उसके माध्यम से ही हिन्दी-संसार के सामने आया था। निम्नोद्धृत सूची से इसकी पुष्टि हो जाती है :

वर्ष १, अंक १. मुख पृष्ठ : 'रक्षा-बन्धन' (कविता)
सं० टि० : आत्म-परिचय
२. सं० टि० : जाके घर में नौ लाख गाय।
सो क्यों छाछ पराई खाय ?
३. मु० पृ० : गये रूप पहचान (कविता)
सं० टि० : नीम-गुड़-वटिका
४. सं० टि० : चुटिया ने लुटिया डुबो दी।
५. मु० पृ० : दिव्य प्रकाश (कविता)
सं० टि० : औघड़ों ने थूक कर चाटा
६. मु० पृ० : नयन (कविता)
सं० टि० : हासा-तमासा
७. मु० पृ० : चुम्बन (कविता)

वर्ष १, अंक ७. सं० टि० : नाटकों का पितरपख

८. मु० पृ० : उसकी स्मृति में (कविता)
सं० टि० : भैंसासुर की नानी

९. मु० पृ० : कविप्रिया (कविता)
सं० टि० : चूड़ी साड़ी की जय बोलो

१०. मु० पृ० : भारत की विधवा (कविता)
सं० टि० : आँक् थू

११. मु० पृ० : दो कविताएँ हैं–देवि! कौन वह ? शौहर अब पहचान (कविता)

१२. मु० पृ० : हरिऔधजी की कविता—दिवाली
सं० टि० : सदा दिवाली साधक की, जो घर गेहूँ होय

१३. मु० पृ० : भिक्षुक (कविता)
सं० टि० : जोगी-जोगी लड़ें खप्परों की हानि

१४. मु० पृ० : सन्ध्या-सुन्दरी (कविता)
सं० टि० : चहिय अमिय जग जुरै न छाछी

१५. मु० पृ० : शरद्पूर्णिमा की विदाई में (कविता)
सं० टि० : मुखड़ा क्यों दरपन में ?

१६. मु० पृ० : खंडहर के प्रति (कविता)
सं० टि० : बैठे से बेगार भली

१७. मु० प० : प्रार्थना (कविता)
सं० टि० : काजल की कोठरी

१८. मु० पृ० : जूही की कली (कविता)
सं० टि० : एकहिं बार आस सब पूजी

१९. मु० पृ० : धारा (कविता)
सं० टि० : मुख में राम बगल में छूरी

२०. मु० पृ० : आत्म समर्पण—मैथिलीशरण गुप्त
आवाहन [कविता]
सं० टि० : का चुप साधि रहा बलवाना ?

२१. मु० पृ० : वन कुसुमों की शय्या [कविता]
सं० टि० : अपने मुँह मियाँ मिट्ठू

२२. मु० पृ० : प्रलाप [कविता]
सं० टि० : राजनीति की अँतड़ी

वर्ष १, अंक २३. मु० पृ० : रास्ते के मुरझाये हुए फूल से [कविता]
सं० टि० : ओस चाटने से प्यास नहीं बुझती
२४. मु० पृ० : तट पर [कविता]
सं० टि० : जीना हो तो मरना सीखो
२५. सं० टि० : दूज का चाँद
२६. मु० पृ० : यहीं [कविता]
सं० टि० : ढकोसला का ढोल क्यों पीटते हो ?
२७. मु० पृ० : स्वप्न में वीणावादिनी [कविता]
सं० टि० : अंधा बाटे रेवड़ी फिर-फिर आपुहि देय
२८. मु० पृ० : हमारी बहू [कविता]
सं० टि० : कोमलकान्त पदावली की बाढ़
२९. मु० पृ० : पं० गिरधर शर्मा 'नवरत्न' की कविता है 'वन्देमातरम्' दिल्ली के साहित्य सम्मेलन में 'मतवाला' मण्डल के वरिष्ठ सदस्य 'निराला' द्वारा गायन।
सं० टि० : चुल्लू भर पानी में डूब मरो
३०. मु० पृ० : होली–'हरिऔध' विफल वासना [कविता]
सं० टि० : फोटो लेकर चाटो
३१. मु० पृ० : स्याही की बूंद–सुमित्रानन्दन पंत, प्रिया से [कविता]
सं० टि० : अजहूँ न बूझ अबूझ
३२. मु० पृ० : प्रगल्भ प्रेम [कविता]
सं० टि० : पतलून ढीली हो गयी
३३. मु० पृ० : गा अपने संगीत [कविता]
सं० टि० : महाअंधेर ! महाअंधेर !
३४. मु० पृ० : ज्येष्ठ [कविता]
सं० टि० : है अजब औंधी तुम्हारी खोपड़ी
३५. मु० पृ० : खोज और उपहार [कविता]
सं० टि० : होश आयेगा उन्हें मौत की बेहोशी में
३६. मु० पृ० : क्यों हँसती हो ? कहाँ देश है ? [कविता]
सं० टि० : क्यों न कटु जान की कुरबा किए बगैर
३७. मु० पृ० : भ्रमरगीत–पं श्रीधर पाठक, तरंगों से [कविता]
सं० टि० : सर्राफ की नजर से तुमको परख लिया है

वर्ष १, अंक ३८. सं० टि० : मुख में राम बगल में छूरी

३९. मु० पृ० : क्या हूँ ? [कविता]

सं० टि० : अब क्या हो ?

४० मु० पृ० : गाता हूँ गीत मैं तुम्हें सुनाने को, विवेकानन्द की अनूदित कविता।

सं० टि० : हम तो यूँ हैं कि हक अदा न हुआ

४१. मु० पृ० : प्रपात के प्रति [कविता], प्रथम प्रभात (कविता)

सं० टि० : कूप-मण्डूक

४२. मु० पृ० : सिर्फ एक उन्माद [कविता], जागी [कविता]

सं० टि० : दाढ़ी और चोटी का मेल

४३. मु० पृ० : १-सन्तप्त, २-भर देते हो, ३-आदान-प्रदान

सं० टि० : परपंच करे पर पंच कहावें

४४. मु० पृ० : कण [कविता]

सं० टि० : अति की भली न चूप।

४५. मु० पृ० : दिल्ली [कविता], यमुने [कविता]

४७. मु० पृ० : दिल्ली [कविता]

सं० टि० : अब भी तो चेतो

४८. मु० पृ० : बादल राग, यमुने (कविता)

सं० टि० भारी भ्रम

४९. मु० पृ० : दो कविताएँ १-वोट-भिक्षुक-पं० नाथूराम शंकर 'शर्मा' २-बादल राग

सं० टि० : बच गई बेचारी

५०. मु० पृ० : बादल राग (कविता)

सं० टि० : देहरादून-सम्मेलन

सम्पादकीय स्तम्भ (अंक ५०) के शीर्ष पर एक व्यवस्थापकीय विज्ञप्ति दी गयी है कि इस अंक के साथ वर्ष पूरा हो गया। एक फाइल में ५० अंक है। 'मतवाला' के ये अंक विभिन्न विद्वानों की दृष्टि से विचारणीय हैं।

'मतवाला' पर हिन्दी-विद्वानों और लेखकों की जो सम्मतियाँ आती थीं, उन्हें 'मतवाला पर 'मत' वालों का 'मत' स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित किया जाता था। कुछ सम्मतियाँ यहाँ उद्धृत की जा रही हैं :

"मतवाला बड़ी योग्यता से निकल रहा । उसकी चुटकियाँ मार्मिक और चुटीली होती हैं। उसमें सहृदयता झलकती है। आलोचनायें चटपटी होती हैं, तथापि उसमें मर्यादा मर्यादित रहती है । मैं पत्र की मंगलकामना करता हूँ। हिन्दी संसार में ऐसे पत्र की बड़ी आवश्यकता थी । परमात्मा उसको दीर्घजीवी करे ।" –कबिवर पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

"मतवाला के मतवालेपन में बावलापन या उतावलापन नहीं है । इसमें निरुत्साह नहीं, उत्साह है, निष्कर्मण्यता नहीं, कर्मप्रियता है, क्षुद्रता नहीं, उदारता है, छिछोरपन नहीं, गंभीरता है ।" –क्षत्रिय–मित्र, नवम्बर, १९२३

"मतवाला' इस युग की एक चीज है। इसकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ अग्रलेख, मतवाले की बहक, चलती चक्की आदि शीर्षक बड़ी ही पैनी आलोचना, रँगीली और चुटीली भाषा तथा मतवाली और निराली अदा के साथ देखने में आते हैं। मीठा साहित्यिक हास इसका प्राण है । हमें तो इसे पढ़कर पूज्य भट्टजी के 'हिन्दी प्रदीप' के कतिपय लेखकों की झलक मिलती है । वह अपने मीठे नशे के झोंक में बड़े-बड़े गंभीर प्रश्नों पर जो निर्भीक आलोचना कर जाता है, वह देखते ही बनती है । भगवान् करे हमारे सहयोगी मतवाले का सदा बोल-बाला बना रहे"–सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग, भाद्रपद १९८०

"आपका पत्र उत्तम है और हिन्दी में ऐसे पत्रों की आवश्यकता थी, जिसे आपने पूर्ण किया । हिन्दी में 'पंच' की शैली का पत्र ही न था, जो मनो-विनोद का काम दे । हम आपके पत्र की भावी उन्नति चाहते हैं और उससे यह भी सम्भव है कि हिन्दी भाषा-भाषियों की संख्या वैसे ही बढ़ेगी जैसी कि प्रारम्भ में चन्द्रकान्ता उपन्यास से बढ़ी। मतवाले की प्रत्येक संख्या में किसी न किसी हिन्दी-साहित्व सेवी का चरित्र छपता है । यह प्रयत्न प्रशंसनीय है ।" –गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

'मतवाला कर डाला मुझको, 'मतवाला' यह आला है ।
खूब निकाला इसको, यह तो सब पत्रों में आला है ॥
–किशोरी लाल गोस्वामी

"मुझे मतवाला बहुत पसन्द आया और उसे बिना पढ़े नहीं छोड़ता ।"
–श्रीधर पाठक

"लेखों हास्य रस और व्यंग्य की बड़ी बहार है । खूब मनोरंजन हुआ ।" –पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

"ऐसे पत्र की हिन्दी में बड़ी आवश्यकता थी। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य तथा संगठन पर जो इसके विचार हैं, उनसे मैं बिलकुल सहमत हूँ। आशा है कि यह मतवाला अपने ढंग का निराला होने के कारण हिन्दी-संसार में विशेष स्थान पावेगा।" –प्रोफेसर पं० बदरीनाथ भट्ट, बी०ए०

'इस पत्र की विशेषता यह है कि राजनैतिक, साहित्यिक एवं सामाजिक समस्याओं एवं प्रश्नों के हास्य के इतने अच्छे ढंग में प्रकट करता है कि पाठक के चित पर पूरा प्रभाव पड़ जाता है। सख्यायें देखने से यह भलीभाँति प्रकट होता है कि पत्र सुसम्पादित है और साहित्य तथा राजनीति की उच्छृंखलता को दूर करेगा। 'मतवाला' अपना निजी कोई इतिहास समाचार-पत्र संसार में छोड़ जायेगा और अन्य लोगों के लिए पथ-प्रदर्शक होगा।" –कर्मवीर, जबलपुर, १५ सितम्बर १९२३

'मतवाला' के प्रथमाब्द-पूर्ति के अवसर पर पं० नाथूराम शंकर शर्मा ने एक कविता लिख भेजी थी जो 'मतवाला' वर्ष २, अंक १ में मुख पृष्ठ पर प्रकशित हुई थी। वह अविकल रूप में उद्धृत की जा रही है :

'मतवाला' का प्रथमाब्द

ले० -श्रीमान् पं० नाथूरामजी शंकर शर्मा 'शंकर'

षट्पदी छन्द

शंकर की घन धार, भटकता मग्न त्रिशूली।
जिसका नृत्य निहार, निरंकुशता सुधि भूली॥
कुचली कुटिला नीति, न्याय जिसने अपनाया।
रगड़ी काँद कुरीति, सुयश का कोष कमाया॥
जिसकी उमंग से चाह को, भर प्रमोद प्याला दिया।
उस 'मतवाला' ने ग्राहकों, प्रथम वर्ष पूरा किया॥१॥

उपसंहार।

'सोरठा'

थिर के तोहि निहार, वर मतवाला साधुरी।
कर सानन्द विहार, डर मतवाला माधुरी॥१॥

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'मतवाला' निराला की जीवन-यात्रा में मील के पत्थर की भाँति है। निराला ने इसप त्र के माध्यम से मुक्त छन्द की प्रतिष्ठा की थी। इसी से उनके व्यंग्यकार का रूप सबसे पहले सामने आया है। इसी में द्विभाषीय रचनाओं का रूपान्तरण कर उन्होंने अपनी बुद्धि का प्रमाण प्रस्तुत किया था। इसी पत्र के द्वारा उन्होंने मृत परम्पराओं के के पोषक महारथियों से लोहा लेकर नये युग की स्थापना की थी। कुछ समय बाद पारस्परिक विवाद तथा मनोमालिन्य के कारण इस पत्र से उनका सम्बन्ध समाप्त हो गया।

निराला द्वारा परोक्षतः सम्पादित पत्र : 'सुधा'

साहित्यिक पत्रकारिता के इतिहास में 'सुधा' पत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह पत्रिका लखनऊ से निकलती थी। इसके सम्पादक थे श्री दुलारेलाल भार्गव तथा पं० रूपनारायण पाण्डेय। 'सुधा' मासिक पत्र था। इसका प्रथम खंड श्रावण-पौष ३०५ तुलसी संवत् (१९८४), अगस्त-जनवरी १९२७-२८ को प्रकाशित हुआ। श्री रूपनारायण पाण्डेय इससे पूर्व 'माधुरी' पत्रिका का सम्पादन कर चुके थे। इसलिए वे पत्रकारिता-सम्बन्धी अनुभव से सम्पन्न थे। श्रीदुलारेलाल भार्गव भी एक सुधी विद्वान् थे जिसका प्रमाण उनके 'सुधा' के सम्पादन से मिलता है। वे 'सुधा' के मुखपृष्ठ पर दोहे लिखा करते थे। भार्गवजी ने अपने 'अभिभाषण' शीर्षक में यह माना है कि "जहाँ पहले 'सरस्वती' उच्चकोटि की साहित्यिक मासिक पत्रिका थी वहाँ इस समय अर्थात् १९२७ में इस श्रेणी की कई साहित्यिक पत्रि-काएँ निकल रही हैं। 'सरस्वती', 'माधुरी', 'चाँद' आदि कई मासिक अच्छे निकल रहे हैं। मासिक पत्र ही स्थायी साहित्य के प्रचार का साधन होते हैं। इसलिए इसमें हल्के लेख नहीं निकलने चाहिए। लेखों का चुनाव और उनका आवश्यक सशोधन और सम्पादन योग्यता के साथ किया जाना चाहिए। सम्पादकों को संसार की सबसे बड़ी-बड़ी घटनाओं और समस्याओं पर गौर करके अपनी ओर से उनकी विवेचना करनी चाहिए।"[1]

सफल कवि की परिभाषा भी भार्गवजी ने 'सुधा' के सम्पादकीय में दी है– "जो बहुज्ञ और बहुश्रुत है जिसकी अन्तर्दृष्टि और बाह्य-दृष्टि प्रखर है, जो प्रतिभा शाली है, सहृदय है, वही सफल कवि हो सकता है।"[2]

'सुधा' के माध्यम से भार्गवजी ने सत्साहित्य की श्रीवृद्धि ही नहीं की प्रत्युत उसका प्रचार और प्रसार भी किया। उन्होंने उसमें विविध विषय के मौलिक लेखों

१. 'सुधा', सन् १९२७, अभिभाषण

२. 'सुधा'–सम्पादकीय, अगस्त, १९२७, पृ० ७

का प्रकाशन करके तथा पुराने लेखकों के अनुभव और ज्ञान को पाठकों के सामने उपस्थित किया एवं नवीन-लेखकों की प्रतिभा को पहचान कर उन्हें प्रश्रय भी दिया। यही नहीं, प्रशंसनीय कृतियों को पुरस्कृत और निंदनीय कृतियों को तिरस्कृत भी 'किया। सुधा' के माध्यम से उन्होने चित्र, संगीत और ललितकलाओं की प्रोन्नति का बीड़ा भी उठाया था। 'सुधा' में प्रकाशित भार्गवजी की सम्पादकीय टिप्पणियाँ सामाजिक कुरीतियों पर तीव्र प्रहार करती हैं। पाक्षिक 'सुधा' के भी सम्पादक–दुलारे लाल भार्गव ही थे।

भार्गवजी सम्पादन-कला में निष्णात् थे। अतएव उन्हें सम्पादकाचार्य भी कहा जा सकता है। भार्गवजी में भाषा-संस्कार, विविध विषयों की सम्पादन-योग्यता साहित्यकारों की कविताओं, लेखों और पुस्तकों को शुद्ध करने की अद्भुत क्षमता थी। भार्गवजी ने ही ब्रजभाषा की मुरझाई हुई लता को फिर से हरा-भरा किया।

इस प्रकार भार्गवजी 'माधुरी' और 'सुधा' नामक दो साहित्यिक पत्रों के सम्पादक थे। 'सुधा' के द्वारा ही उनका अधिकांश साहित्य हिन्दी-संसार के सामने आया। उनके दोहे महाकवि बिहारी के दोहों से टक्कर लेते हैं। 'सुधा' में समय-समय पर प्रकाशित उनके दोहे उनकी अद्भुत साहित्यिक प्रतिभा के परिचायक हैं।

इन दोनों साहित्यिकों का प्रभाव इस पत्र पर ऐसा पड़ा कि यह एक साहित्यिक पत्र बन गया। इस पत्र में साहित्यिक कविताएँ और लेख ही मुख्यरूप से प्रकाशित होते थे। व्यंग्य तथा चित्र भी निकलते थे। 'सुधा' एक साहित्यिक पत्र था, अतः उसमें साहित्य की दोनों प्रमुख विधाओं (पद्य तथा गद्य) का प्रकाशन होता था।

'सुधा' के दूसरे खंड से निराला का आगमन हो जाता है। निराला ने 'सुधा' को हिन्दी की श्रेष्ठ साहित्यिक-सामाजिक पत्रिका बना दी। इन दिनों-जैसी सम्पादकीय टिप्पणियाँ 'सुधा' में निकलीं, वैसी दूसरी पत्रिकाओं में नहीं। वे सुन्दर अलंकृत गद्य की नमूना थीं। अपनी कलात्मक भंगिमा के कारण वे औसत सम्पादकीय लेखों से भिन्न होती थीं। 'सुधा' ने रूढ़िवाद का डट कर विरोध किया। उसने विश्वविद्यालयों को ललकारा कि नये साहित्य के लिए वे अपने द्वार खोलें। निराला ने 'सुधा' के माध्यम से आमूल सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि पराधीन देश में केवल शूद्र रहते हैं। स्त्रियों की प्रगति के बिना राष्ट्र की उन्नति असम्भव है। निराला ने इस पत्रिका के माध्यम से राष्ट्रीय आन्दोलन को शक्तिशाली बनाने, अँगरेजी की जगह भारतीय भाषाओं का व्यवहार करने, बँगला-साहित्य के समानान्तर हिन्दी

साहित्य को विकसित करने पर बराबर बल दिया। 'समन्वय' और 'मतवाला' की तरह यहाँ भी सम्पादकरूप में निराला का नाम नहीं छपता था लेकिन यह था परोक्षतः सम्पादित निराला द्वारा ही।

'सुधा' एक साहित्यिक पत्र था। इसलिए इसमें साहित्य-सम्बन्धी विधाओं की प्रधानता होती थी। पद्य तथा गद्य के अनेक स्तम्भ प्रकाशित होते थे, साथ ही इसमें व्यंग्य, चित्रसूची तथा सामाजिक क्रान्ति-सम्बन्धी लेखों का प्रकाशन भी होता था। इन समस्त विषयों का प्रस्तुतीकरण इसमें विशेष प्रकार से किया जाता था।

'सुधा' के प्रथम पृष्ठ पर एक अद्भुत चित्र छपता था। उस चित्र के नीचे एक दोहा लिखा होता था। मुखपृष्ठ पर किसी देवता से सम्बन्धित प्रार्थना या किसी प्रसिद्ध कवि की कविता प्रकाशित होती थी। इसके पहले स्तम्भ में 'पद्य' तथा दूसरे स्तम्भ में 'गद्य' शीर्षक तथा उसके बाद चित्रसूची, व्यंग्य, सादे स्तम्भों का प्रकाशन होता था। 'सुधा' के वर्ष १, खण्ड १, श्रावण-पौष, ३०५ तुलसी संवत् (१९८४ वि०), अगस्त-जनवरी,१९२७-२८ का एक नमूना प्रस्तुत किया किया रहा है, जिसे देखकर उसके प्रस्तुतीकरण से सम्बन्धित सारी बातें ज्ञात हो जायेंगी।

'सुधा' के प्रथम पृष्ठ पर इस अंक में एक मोहक चित्र (श्रीकृष्ण गौ के साथ) प्रकाशित होता था। इसके नीचे श्री दुलारेलाल भार्गव द्वारा रचित निम्नलिखित दोहा प्रकाशित होता :

"मुरली मोहन-मुँह लगी, अनुचित-उचित न चेति,
आपु पियति मुख-ससि-सुधा, पै औरन जिय लेति।"

इसके पश्चात् 'श्रीगणेश' शीर्षक से गोस्वामी तुलसीदास की निम्नांकित पंक्ति अंकित होती थी :

"कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधा हू।"

तत्पश्चात् 'श्रीगणेश' शीर्षक के अन्तर्गत 'जगन्नाथदास रत्नाकर' की गणेश वन्दना छपी :

(१) विघन-विदारन कौं, कुमति निवारन कौं,
टारन कौं जेतौ जग बिपति पसारौ है;

कहै रतनाकर, कहति गिरिजा यौं नाथ,
हाथ लग्यौ रावरैं गजानन ही बारौ है।
रैन-दिन चैन है न सैन इहिँ उद्यम मैं,
दम हू न लैन पावै रंचक विचारौ है;
जारौ किन कंत नैन तीसरैं दुरंत सबै,
एक दंत ही कौ अबै बालक हमारौ है।

(२) केते दुख-दारिद विलात सुंड-चालन मैं,
कसमस हालन मैं केते पिचले परैं;
कहै रतनाकर, दुरित-दुरभाग भागि,
मग तैं बिलग बेगि त्रासनि चले परैं।
देखि गनन(थजू अनाथनि कौं जोरे हाथ,
ठोंकत हूँ माथ के न नैकुँ निचले परैं;
मोदक लै मोद देन काज निज भक्तनि कौं,
गोद तैं उमा के मचलाइ बिचले परैं।

'सुधा' सुन्दर साहित्य का एक अनुपम संग्रह है। कभी यह साहित्य पुराना नहीं हो सकता। हरिश्चन्द्र की 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' बालकृष्ण भट्ट का 'हिन्दी-प्रदीप', पं० प्रतापनारायण मिश्र का 'ब्राह्मण' और महावीरप्रसाद द्विवेदी की 'सरस्वती' वर्षों पुरानी हो जाने पर भी आज नयी की तरह पढ़ी जाती हैं। यही हाल 'सुधा' का भी है। इसके लेख और चित्र उच्चकोटि के हैं। इसका वार्षिक मूल्य साढ़े छः रुपया तथा छमाही मूल्य साढ़े तीन रुपया था। इसका प्रारूप द्रष्टव्य है:

सुधा

मासिक पत्रिका

वर्ष १, खण्ड १, श्रावण–पौष, ३०५ तुलसी–संवत् (१९८४ वि०)

अगस्त–जनवरी, १९२७–२८ ई०

प्रधानसम्पादक :

श्री दुलारेलाल भार्गव, श्री रूपनारायण पाण्डेय

वार्षिक मूल्य ६॥) छमाही मूल्य ३॥)

लेख—सूची

१. पद्य

संख्या कविता	कवि
१. अग्निपरीक्षा	बाबू सियारामशरण गुप्त
२. अनुरोध	श्रीयुत जयशंकर 'प्रसाद'
३. अबोध	बाबू सियारामशरण गुप्त
४. अभिलाष	श्री रामलोचन शर्मा
५. अरुणोदय	श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद खत्री 'मिलिंद'
६. अभिलाषा	,, ,,
७. अज्ञान	ठाकुर गोपालशरण सिंह
८. आत्म-संगीत	श्रीयुत श्रीरत्न शुक्ल एम्० ए०
९. आशा	श्रीयुत रामकिशोर शर्मा 'किशोर'
१०. उत्तेजिता	पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
११. उषा	श्रीयुत 'गुलाब'
१२. एक अप्रकाशित पत्र	पं० श्रीधर पाठक
१३. एक मित्र को	,,
१४. करुण क्रंदन	श्रीयुत मोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी'
१५. कलरव	पं० सुमित्रानंदन पंत
१६. कलरव	पं० सुमित्रानंदन पंत
१७. चितचोर	ठाकुर गोपालशरण सिंह
१८. छविमयी	,,
१९. डाकू	बाबू सियारामशरण गुप्त
२०. डाक्टर	,,
२१. दुर्योधन विलाप	श्रीयुत 'सनेही'
२२. दो साहित्यिक मित्रों के पत्र	श्री बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'
२४. निवेदन	बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' बी० ए०
२५. परीक्षा	श्रीयुत गोकुल चंद्र शर्मा बी० ए०
२६. प्यासा	ठाकुर गोपालशरण सिंह
२७. प्रणयोन्मुखी	बाबू सियारामशरण गुप्त
२८. बांसुरी	बाबू मैथिलीशरण गुप्त

संख्या कविता	कवि
२९. भिखारी	श्रीयुत कंटक
३०. भीष्म-प्रतिज्ञा	जगन्नाथदास 'रत्नाकर' बी० ए०
३१. मधुप	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
३२. मधुवन का माली	इलाचन्द्र जोशी
३३. मनुहार	श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर' बी० ए०, एल० एल० बी०
३४. मायावती	इलाचन्द्र जोशी
३५. मिलन	पं० सोहनलाल द्विवेदी 'विशारद'
३६. लोचन	ठाकुर गोपालशरण सिंह
३७. वर्षा	श्रीयुत 'श्रीकर'
३८. वर्षा का प्रथम आसार	इलाचन्द्र जोशी
३९. विचित्र मानव समाज	रामनरेश त्रिपाठी
४०. विनिमय	श्रीयुत मोहनलाल महतो
४१. विलाप	श्रीयुत 'सनेही'
४२. शांति	पं० जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी'
४३. श्रीगणेश	जगन्नाथदास 'रत्नाकर'
४४. सुधा	रूपनारायण पाण्डेय
४५. सुन्दरी	श्रीयुत 'गुलाब'
४६. स्मृति	ठाकुर गोपालशरण सिंह
४७. स्वतंत्रता का दीपक	रामनरेश त्रिपाठी
४८. हूक	सियारामशरण गुप्त

२. गद्य

संख्या लेख	लेखक
१. अलंकार-शास्त्र	पं० शालग्राम शास्त्री, विद्यावाचस्पति
२. अशोक की शासन-व्यवस्था	पं० सत्यकेतु विद्यालंकार
३. अश्रृंगारी बिहारी	पं० परशुराम चतुर्वेदी
४. कविता में रहस्यवाद	श्रीयुत अवध उपाध्याय

संख्या	लेख	लेखक
५.	गोस्वामी तुलसीदास का काव्य-ज्ञान	चन्द्रमौलि सुकुल
६.	चित्रकला	पं० हेमचन्द्र जोशी
७.	चित्रकार	पं० विनोदशंकर व्यास
८.	छायावाद	श्रीयुत अवध उपाध्याय
९.	पुराण-तत्त्व	रामावतार साहित्याचार्य
१०.	बिहारी-रत्नाकर (आलोचना)	डॉक्टर सर ज्यार्ज ग्रियंसन
११.	बौद्ध दर्शन	लाला कन्नोमल
१२.	साहित्य और उसकी पाठ-प्रणाली	श्रीयुत अवधकिशोर वर्मा 'वाण'
१३.	भक्ति	भवानीशंकर चौधरी
१४.	संगीत-साधना	श्रीगुरु नानक
१५.	हिन्दी किसकी मातृभाषा है	पं० चन्द्रदत्त शास्त्री
१६.	हृदय की प्यास	श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव

....

अन्त में चित्र-सूती, व्यंग्य तथा सादे चित्र नामक स्तम्भ छपते थे।

'सुधा' में निराला ने १९२८ ई० में वैतनिक रूप में कार्य करना प्रारम्भ किया। 'सुधा' अपने युग का प्रतिनिधि साहित्यिक पत्र था इसलिए उसके सम्पादन के गौरव का लोभ संवरण करना निराला के लिए कठिन था। निराला का नाम उसमें सम्पादक-रूप में भले ही न छपता रहा हो, फिर भी 'सुधा' के 'सम्पादकीय' निराला-लिखित हैं और वे उनकी तद्युगीन मनोभूमि से परिचय प्राप्त करने के लिए बहुत उपयोगी हैं। अब तक के आघात-प्रघात एवं जीवन-द्वंद्व के कारण वे व्यवस्था-विरोधी हो गये थे। उनकी मन:स्थिति प्रतिदिन टूटती जा रही थी। उनकी तत्कालीन सारी मन: स्थितियों का आभास उनकी टिप्पणियों से हो जाता है।

अँगरेज़ी राज्य और भारतीय जनता के सम्बन्धों पर विचार करते हुए निराला ने लिखा था कि अँगरेजों ने भारत को गुलाम बनाया ही इसीलिए था कि यहाँ से कच्चा माल खरीद करके विलायत ले जाएँ और वहाँ से तैयार माल लाकर यहाँ बेचें। उनकी नीति भारत को खेतिहर उपनिवेश बनाकर रखने की थी, यहाँ के उद्योग-धन्धों को विकसित करने की नहीं। इसीलिए निराला ने लिखा :

"महात्माजी के आन्दोलन के बाद इंग्लैंड के व्यवसायी भारत में खूब सजग रहते हैं और ये पूँजीपति ही चूँकि प्रकारान्तर से इंग्लैण्ड के विधाता हैं, इसलिए वे इतने उदार होंगे कि अपनी भलाई भूलकर भारत की भलाई का ख्याल करेंगे, यह बिलकुल भ्रांत धारणा है। भारत अँगरेजी माल के खपाने के लिए अँगरेजों का सबसे बड़ा केन्द्र है। यहाँ से कच्चे माल की जितनी पैदावार होती है, उसका अधिकांश भाग वहीं के व्यापारियों के हाथ लगता है, जिससे एक-एक के सैकड़ों वसूल होते हैं।"[१]

उनकी साम्राज्यवादी आर्थिक नीति का विश्लेषण निराला ने निम्नांकित टिप्पणी में किया :

"साम्राज्यवाद इंग्लैण्ड की राजनीति का मूल है। पूँजी के द्वारा वणिक शक्ति की वृद्धि के इतिहास के साथ-साथ साम्राज्यवाद का इतिहास इंग्लैण्ड के साथ गुँथा हुआ है। पूँजी की तरह यह हृदयहीन हैं। अंगरेजों की शक्ति का समस्त संसार पर प्रभाव है। साथ-साथ अपनी वृत्ति या जातीय साम्राज्यवादी जीवन के कारण इंग्लैण्ड संसार भर में बदनाम है। इतिहास के जानकार जानते हैं कि इग्लैण्ड की सरकार पूंजीपतियों की सरकार है और साम्राज्यवाद उसकी जीवनी-शक्ति, मूल आधार।"[२]

भारतीय शोषण-नीति के अस्तित्त्व को बनाये रखने के लिए अँगरेजों ने साम्राज्यवादी राजनीतिक दाँव-पेंचों का प्रयोग किया। उनकी विशेषता यह थी कि एक ओर उच्चवर्गों को शासन में भाग लेने को कहते थे, नये-नये सुधारों की घोषणा करते थे, दूसरी ओर वे जनता के बढ़ते हुए असन्तोष का अधिकाधिक दमन भी करते थे। निराला ने अपनी व्यंग्यपूर्ण शैली में ब्रिटिश घोषणाओं का मखौल उड़ाते हुए लिखा :

"दीपावली का भोर जब जलते हुए आशा-प्रदीपों का अनुमान-तैल समाप्त-प्राय हो रहा था, जब भाग्य का पाँसा कोर केवल लुढ़क चला था और निराश-निशा का ऊषाकालीन अंधकार घनीभूत हो रहा था, देहली के राजप्रासाद से प्रातःकालीन मधुर तूर्य-निनाद के समान वाइसराय महोदय की घोषणा ने भारत के राजनीतिक जीवन के एक नये ब्राह्म मुहूर्त की सूचना दी। देश के बंदी और मागध दौड़-दौड़ कर तार यंत्र की लय के साथ प्रभु का गुण-गान करने लगे।

१. 'सुधा', फरवरी, '३०, सम्पादकीय टिप्पणी–७
२. 'सुधा', अक्टूबर, '३१, सं० टि०–९

मांडलिकों की विलासमयी निद्रा की खुमारी बहुत कुछ उतर गयी। सद्‌गृहस्थों ने भविष्य का प्रोग्राम बनाया और साम्प्रदायिक दूकानदारों ने नये फैशन की चीजों से दूकान की श्रीवृद्धि की। किन्तु दीवाने, भक्त, संन्यासियों ने भभूत रमायी, लँगोट कसा, चीर पहना और शंखध्वनि के साथ अपने इष्ट साधन में तत्पर हो गये।"[१]

निराला ने ब्रिटिश सुधारों का विरोध किया, पूर्ण स्वधीनता की माँग का समर्थन किया और दमन की बर्बरता का चित्र खींचकर जनता को संघर्ष करने के लिए प्रेरणा भी दी। ब्रिटिश अन्याय के विरुद्ध यतीन्द्रनाथ दास ने जब अनशन करते हुए प्राण दिये, निराला ने तब लिखा था :

"भारतवर्ष को जितना सहना था, सह लिया। वह समय निकल गया, जब खिलौना पाकर भारत बहल जाता था। देश समझ गया है कि हाथ पर हाथ धर कर बैठने से काम न चलेगा। भारत में एक नई लहर पैदा हो गई है। नवयुवकों ने रणभेरी बजा दी है।"[२]

लखनऊ में सत्याग्रहियों पर पुलिस को डंडे बरसाते देखकर निराला ने लिखा था :

"स्त्रियों और बच्चों के अंगों पर डण्डों की मार, घावों से बहती हुई रक्त धाराओं को देखकर अपने शासन के सुदर्शन रूप पर इतरानेवाली अँगरेज सरकार के लिए उपयुक्त शब्द हमारे कोष में अभी नहीं, मुमकिन है, पीछे गढ़ लिया जाए।"[३]

अँगरेजों ने एक तरफ सत्याग्रहियों आदि पर मुकदमा चलाया और सजाएँ दीं, दूसरी तरफ भारत को नयी रियायतें देने की घोषणा की। दमन और सुधारों की इस नीति के बारे में निराला के कथन अवलोकनीय हैं :

"सुन्दर हवाई महलों के स्वप्न देखकर सन्तुष्ट और आह्लादित होने वाले राजनीतिक नेताओं के दिन लद गये। अब तो क्रियात्मक और ठोस बातों की जरूरत है। उनके बिना युवक भारत की जाग्रत स्वातंत्र्य-लिप्सा शान्त नहीं की जा सकती। यदि सरकार चाहती है कि एक ओर तो मेरठ षड्‌यंत्र, लाहौर हत्याकाण्ड और अन्यान्य राजनीतिक अभियोगों द्वारा युवक-हृदय को कुचल डाला जाए और

---

१. 'सुधा', दिसम्बर, '२९, सं० टि०–१
२. 'सुधा', नवम्बर, '२९, सं० टि०–१
३. 'सुधा', जून, '३०, सं० टि०–१

दूसरी ओर इस प्रकार के अनिश्चित और नीहारिकामय धुंधले प्रलोभन उपस्थित कर उसको वंशवद बना लिया जाय तो यह उसकी भारी भूल है।"[1]

अँगरेजों की नीति यह थी कि भारत के स्वाधीनता-आन्दोलन को यथा-संभव बाकी देशों से दूर रखा जाए, विशेषकर सोवियत रूस की हवा उसे न लगने दें। सोवियत रूस ने अफगानिस्तान से संपर्क कायम किया तो अँगरेज चौकन्ने हो उठे कि भारत अफगानिस्तान के रास्ते क्रान्तिकारी रूस से संपर्क न स्थापित कर ले। निराला ने अँगरेजों की परेशानी का चित्रण निम्नांकित सम्पादकीय टिप्पणी में इस प्रकार किया है :

"अमीर यदि रूसी दूत का स्वागत कर लेते हैं तो वाइसराय महोदय के पेट में चूहे कूदने लगते हैं। वे उँगलियों के बल खड़े होकर और सारस के समान दूरातिदूर तक गर्दन ऊँची किए हुए छिपे-छिपे यह देखने का प्रयत्न करते हैं कि किवाड़ों के दूसरी ओर, दीवार के उस पार क्या स्नेहालाप हो रहा है? और जब उन्हें निश्चय हो जाता है कि कुछ दाल में काला है, तो फौरन छींक उठते हैं। जब तक दोनों पक्ष घबराकर दूर भागने का प्रयत्न करते हैं, तब तक गवर्नमेंट ऑफ् इण्डिया लंबे डग रखती हुई कमरे में आ दाखिल होती है। सारा मज़ा किरकिरा हो जाता है।"[2]

भारत के कुछ पूँजीपति और उनके प्रतिनिधि यह समझते थे कि अँगरेजों के सम्पर्क से भारत का विकास होगा। इसी प्रकार बुद्धिजीवियों का एक दल यह कह रहा था कि देश में सांस्कृतिक नवजागरण अँगरेजी राज के सम्पर्क का परिणाम है। कुछ प्रगतिशील विद्वान् भी, जो इतिहास को वैज्ञानिक दृष्टि से परखते हैं, मार्क्स की भावना को न समझकर कुछ सूत्रों की आवृत्ति के बल पर, वे सिद्ध करते हैं कि भारतीय समाज-संस्कृति शताब्दियों से स्थिर और गतिरुद्ध थी, अँगरेजों से संबद्ध होने के कारण प्रथम बार वे सक्रिय और चेतन हुईं। इस मत के विपरीत निराला का यह मत था :

"भारतवर्ष अँगरेजों की साम्राज्य-लालसा का सर्वप्रधान ध्येय रहा है। यहाँ की सभ्यता और संस्कृति अँगरेजों की सभ्यता और संस्कृति से बहुत कम मेल खाती थी, पर सात समुद्र पार से आकर इतने विस्तृत और इतने सभ्य देश में राज्य करना जिन अँगरेजों को अभीष्ट था, वे बिना अपनी कूटनीति का प्रयोग

१. 'सुधा', दिसम्बर, '२९, सं० टि०–३
२. 'सुधा', नवंबर, '२९, संपा० टि०–५

किए कैसे रह सकते थे ? अँगरेजों की नीति हुई-भारत के इतिहास को विकृत कर दो और हो सके तो उसकी भाषा को मिटा दो। चेष्टाएँ की जाने लगीं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति तुलना में नीची दिखाई जाने लगी। हमारी भाषाएँ गँवारू, असाहित्यिक और अविकसित बताई जाने लगीं। हमारा प्राचीन इतिहास अंधकार में डाल दिया गया। बाकायदा अँगरेजी की पढ़ाई होने लगी। इस देश का शताब्दियों से अंधकार में पड़ा हुआ जन-समाज समझने लगा की जो कुछ है, अँगरेजी सभ्यता है, अँगरेजी साहित्य है और अँगरेज़ है।"[१]

राष्ट्रीय स्वाधीनता पर बहुत से साहित्यकारों ने लिखा है। निराला की विशेषता यह है कि उन्होंने साम्राज्यवाद के आर्थिक शोषण, राजनीतिक दाँव-पेंच और सांस्कृतिक नीति का गहराई से विश्लेषण किया, वे सब एक दूसरे से कैसे जुड़े हैं, यह दिखाया। उन्होंने उन उदारपंथी बुद्धिजीवियों का विरोध किया जो अँगरेजों के सहारे भारत का औद्योगिक और सांस्कृतिक विकास करना चाहते थे। हमारी भाषा को कोई गँवारू न कहे, उसे अविकसित न बताये, हमारा साहित्य अँगरेजी से हेठा साबित न हो, इस साम्राज्यविरोधी चेतना को निराला ने 'सुधा' की सम्पादकीय टिप्पणियों में व्यक्त किया है।

राजा, जमींदार, किसानों से सम्बन्धित टिप्पणियाँ भी उन्होंने 'सुधा' में लिखी हैं। वे तत्कालीन देशी राज्यों को भी अँगरेजी राज्य से अलग करके नहीं देखते थे। उनके अत्याचारी शासन के लिए भी पूर्णतः अँगरेज ही जिम्मेदार थे। पटियाला-राज्य में प्रजा पर बर्बर अत्याचारों का विवरण पढ़कर निराला ने क्रोध से भर कर लिखा था :

"सभ्यता और न्याय का ढोंग रचनेवाली ब्रिटिश सरकार यदि अपने हिमायती दुष्ट, व्यभिचारी देशी नरेशों की विलासिता और अत्याचारों को इस प्रकार छिपाने का प्रयत्न करेगी, यदि वह उनकी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए निरीह और निर्बल प्रजा का इस प्रकार बलिदान करेगी, न्याय का गला इस प्रकार घोंटेगी तो शीघ्र ही उसे सभ्य जातियों के सामने मुँह काला करना पड़ेगा। उसे इन पापों का शीघ्र ही दंड मिलेगा।"[२]

अँगरेजों के आगमन के पहले भी राजा प्रजा पर अत्याचार करते थे, लेकिन उस समय उन्हें यह डर रहता था कि अत्यधिक अत्याचार करने पर प्रजा विद्रोह कर देगी, उन्हें लूट लेगी। इस समय देशी राजाओं के रक्षक हो गये थे अँगरेज।

---

१. 'सुधा', जून,'३०, संपा० टि०-६

२. 'सुधा', नवम्बर, '२९, संपा० टि०-६

इसलिए अब वह भय जाता रहा। निराला ने लिखा कि अब वे लंदन-पेरिस की करते हैं, प्रजा को जी भर कर सताते हैं :

"केवल एक दृष्टि रहती है कि सरकार प्रसन्न रहे। दूसरों की महिलायें छीन ली गयीं, अत्याचार पर अत्याचार हुए, लगान पर लगान बढ़ा, प्रजा ने जरा-सी आवाज कृपा के लिए उठाई, तो गाँव का गाँव फूंक दिया गया।"[1]

निराला ने 'सुधा' में जो टिप्पणियाँ लिखीं, उनमें बार-बार उन्होंने युवकों का आह्वान किया कि वे गाँवों में जाकर किसानों का संगठन करें। शहरों में युवकसम्मेलन का आयोजन करें। जो नेता अँगरेजी में धुंआधार भाषण देते थे, उनके बारे में निराला ने लिखा कि वे बातूनी, आदर्शवादी और बगुला भगत हैं।[2]

निराला का विचार यह था कि राजनीतिक प्रचार का लक्ष्य यह होना चाहिए कि स्वदेशी किसान शिक्षित हों, उनमें इतनी योग्यता उत्पन्न हो कि वह अपनी समस्याओं पर स्वयं विचार करें। उद्देश्य केवल यही नहीं होना चाहिए कि वे कुछ नेताओं के भक्त बनकर रह जायें। निराला ने जेल जानेवाले सत्य-ग्रहियों को लक्ष्य करके लिखा है :

"जितने आदमी जेल में साल-साल भर की सजा भुगत रहे हैं, अगर आन्दोलन से पहले कहा जाता है कि भारत में तीस हजार केन्द्र बनाकर मूर्ख ग्रामवासियों को शिक्षा दीजिए, उन्हीं की मातृभाषा में, संसार की आवश्यक बड़ी-बड़ी बातें, उन्हीं से प्राप्त रोटियों से गुजर करते हुए, किसी से लड़िये मत, वे परिश्रम करके अन्न पैदा करेंगे, आप भोजनों की फिक्र करेंगे, आप उनकी विद्या तथा शिक्षा की फिक्र कीजिए, आपका और उनका इस तरह बराबर का व्यवहार रहेगा, तो इतनी बड़ी संख्या दीख पड़ती या नहीं, इसमें संदेह।"[3]

काँग्रेस की अपेक्षा निराला की सहानुभूति क्रान्तिकारियों के प्रति अधिक थी। निराला किसानों को संगठित कर उन्हें स्वाधीनता–आन्दोलन में शामिल करना ज्यादा आवश्यक समझते थे। राजनीति की तरह प्रगतिशील साहित्य के विकास के लिए भी निराला का किसान-सम्बन्धी दृष्टिकोण अत्यंत महत्त्व का है।

भारतीय समाज में जाति-पाँति, ऊँच-नीच के भेदभाव, छुआछूत से सभी लोग परेशान हैं। सबसे अधिक परेशान वे लोग हैं जो इस भेदभाव से सबसे

---

१. 'सुधा', नवम्बर ३२, संपा० टि०-२

२. 'सुधा', अक्टूबर, '२९, संपा० टि०-१

३. 'सुधा', सितम्बर,'३०, संपा० टि०-८

अधिक फायदा उठाते हैं। निराला के अनुसार जाति-प्रथा का विनाश और समानता के आधार पर समाज का पुनर्गठन एक राजनीतिक कर्तव्य था। इसे पूरा किये बिना राष्ट्रीयता का विकास असम्भव था। जो ब्राह्मण और क्षत्रिय अपनी उच्चता का दंभ नहीं छोड़ते, जो अंत्यजों को समान अधिकार नहीं दे सकते, वे नवीन भारत का निर्माण भी नहीं कर सकते। इसीलिए निराला ने लिखा:

"हमारी राजनीतिक दुर्बलता यहीं पर है। यहीं से हमें समाज-जातीय-समाज-भारतीय समाज की नींव डालनी है। उसी की मजबूती हमारे राष्ट्र की दृढ़ता है।"[1]

निराला वर्ण-व्यवस्था की उपयोगिता अथवा व्यर्थता इतिहास के संदर्भ में देखते थे। उनका विचार यह था कि किसी समय यह वर्ण-व्यवस्था आवश्यक थी और इस व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मणों ने सांस्कृतिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया था, किन्तु जो व्यवस्था शताब्दियों से टूट रही थी और अब बीसवीं सदी में उसे पूरी तरह निर्मूल किए बिना सामाजिक प्रगति संभव न होगी। वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध निराला का तर्क यह भी था कि पराधीन देश के नागरिकों में न ब्राह्मण होते हैं, न क्षत्रिय, दास होने के कारण सब समान रूप से शूद्र हो जाते हैं। इसीलिए निराला का कहना था :

"म्लेच्छ-शासन में रहने का 'स्मृति' में निषेध है, क्योंकि इससे जाति में संस्पर्श दोष आ जाते हैं। आर्य जाति अनार्य संस्कारों में पड़कर अनार्य हो जाती है। हमारे यहाँ ऐसा ही हुआ। चिरकाल से म्लेच्छ- संसर्ग ने जाति को पूर्वस्थान से च्युत कर दिया। रक्षा के लिए अनेक प्रकार की चेष्टायें होती रहने पर भी आचार-विचार, वेश-भूषा और भाषा तक में म्लेच्छों के चिह्न आ गये। पर उच्च वर्णवालों ने फिर भी अपनी धार्मिक अकड़ न छोड़ी। पराधीन जाति शूद्रत्व को प्राप्त करती है, यह विश्वास उसे न हुआ।"[2]

इन टिप्पणियों में निराला ने इस व्यवस्था के खोखलेपन, वर्तमान युग में उसकी निःसारता, इसके कारण निर्धन ब्राह्मणों में फैले हुए मिथ्या अहंकार और दंभ का चित्रण कर उसकी कड़ी आलोचना भी की।

नारी की स्वाधीनता को लेकर भी निराला ने 'सुधा' में टिप्पणियाँ लिखी हैं। तत्कालीन परिस्थिति में रूढ़िवादियों का मत था कि उच्च शिक्षा पुरुषों के

१. 'सुधा', १६ अगस्त,'३३, संपा० टि०-१
२. 'सुधा', नवम्बर,'३२, संपा० टि०–'हिन्दुओं का जातीय संगठन'

लिए आवश्यक है; स्त्रियों को ज्यादा पढ़ा-लिखाकर करना क्या है ? क्या उन्हें नौकरी करनी है ? निराला का विचार था कि शिक्षा अपने आप में वांछनीय है, शिक्षित होकर स्त्रियाँ स्वावलम्बी बनें तो यह और भी अच्छा है। राष्ट्र के लिए नागरिकों को जन्म देनेवाली माताओं को अशिक्षित नहीं रहना चाहिए।

"महिलाओं की स्वतंत्रता ही उनके जीवन की सब दिशाओं का विकास करेगी। हमें सिर्फ उनकी स्वतंत्रता का स्वरूप बतलाना है, और यह भी सत्य है कि पुरुषों के निरादर करने पर भी स्त्री-शक्ति का विकास रुक नहीं सकता, न वह अब तक कहीं रुका है। चूँकि पुरुष निराधार स्त्रियों की अपेक्षा इस देश में अधिक समर्थ हैं, इसलिए हम स्त्री-स्वतंत्रता के कार्य में पुरुषों से मदद करने के लिए कहते हैं, क्योंकि नारी ही भावी राष्ट्र की माता है। मूर्ख, पीड़ित और पराधीन माता से तेजस्वी, स्वतंत्र और मेधावी बालक-बालिकाएँ नहीं पैदा हो सकतीं, जिससे राष्ट्र का सर्वांश जर्जर हो जाता है।"[1]

निराला प्रत्येक समस्या पर राष्ट्र के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से विचार करते हैं। नारी की स्वाधीनता की समस्या देश के आर्थिक विकास, राजनीतिक आन्दोलन और नवीन साहित्य के अभ्युदय से जुड़ी हुई है। स्त्रियाँ स्वावलम्बी बनें। अभी देश अपने आधे हाथों से काम करता है। वे घर की सीमाओं को लाँघकर बाहर आयें। देश के सामाजिक आन्दोलन में भाग लेकर उसे मजबूत बनायें। वे शिक्षित हों, जिससे उनके बच्चे समर्थ साहित्यकार बनें। लखनऊ के एक महिला-सम्मेलन में किसी नेता ने विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार पर भाषण दिया। उसने कहा कि स्त्रियों के पास वह दृष्टि होनी चाहिए जिससे सच्चा रूप पहचान सकें। इस पर खद्दर की साड़ी पहने हुए एक लड़की आगे बढ़ी। वहाँ विदेशी सूत की देशी साड़ी पहने हुए एक राष्ट्रनेत्री भी बैठी हुई थीं। निराला को लगा कि उस लड़की को देखकर राष्ट्रनेत्री का चेहरा स्याह पड़ गया है। इस पर निराला ने लिखा :

"इतना सुनते ही (अर्थात् विदेशी वस्तुओं से सुन्दरता घटती है - नेता की यह बात सुनते ही) खद्दर की साड़ी से सजी हुई एक किशोरी, प्रभात की ज्योतिर्मयी तरंग की तरह, अपने अल्प सज्जित रूप की तरुण लहरों से उमड़ पड़ी। वहीं संसार-प्रसिद्ध भारत की आदर्श राष्ट्रनेत्री भी बैठी हुई थीं। उनके अधरों के पल्लव अंधकार से ढँक गये। उनकी बेशकीमत विदेशी सूत की जरीदार देशी साड़ी भी अपनी रजतशुभ्र द्युति से उस अंधकार को दूर नहीं कर सकी।

---

१. 'सुधा,' सितम्बर, '३२, संपा० टि०-६

उस तरुण बालिका की अगम्य द्युति राष्ट्र की आत्मा की ज्योति थी, वहाँ प्राणों का प्याला अपने अपार रूप के गर्व से उस समय के लिए ऊपर तक भरकर कुछ छलक गया था, जिसकी प्रभा से सभा-स्थल कुछ काल के लिए तड़ित-हत, चकित, स्तभित रह गया। उस अपराजित खिली हुई रूपराशि में थोड़ी देर के लिए राष्ट्र की नारी की अभावशून्य अपनी ही मौलिकता से दीप्त स्वर्गीय छवि आ गई थी।"[1]

निराला की विचारधारा का महत्त्व यह है कि उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को व्यापक क्रान्ति के रूप में देखा। उस क्रान्ति के प्रत्येक स्तर को सूक्ष्म दृष्टि से परखा तथा इन स्तरों के पारस्परिक सम्बन्ध को भी पहचाना था। उन्होंने लिखा :

"महान् विप्लव ही हर एक सुधार का मूल है। स्त्रियाँ उन विप्लवों के साथ-साथ अधिकार-सम्बन्धी जैसे-जैसे परिवर्तन समाज में होते गये, वैसे ही वैसे अपना पूर्ण रूप बदलती गयीं।"[2]

इन टिप्पणियों में विचारधारा नहीं है, एक भाव-विह्वल मनःस्थिति है, वह भूमि है जिससे कलात्मक साहित्य की सृष्टि होती है। निराला का मन एक भारतीय स्त्री की दुर्दशा देखकर तड़प उठा है।

शास्त्र और रूढ़िवाद से सम्बन्धित टिप्पणियाँ भी निराला ने 'सुधा' में लिखीं। धर्म और रूढ़ि में भेद करते हुए निराला ने लिखा :

"सब प्रणालियाँ मनुष्य ने ही सोचकर समय-समय पर अपनी भलाई के लिए समाज में चलाई। यदि हम उन्हें पकड़कर उन्हें ही अपना धर्म मान बैठें, तो हम धोखा खायेंगे। कारण, हम एक जड़ तरीके को धर्म समझ लेंगे। धर्म कभी कोई कानून, कोई रीति नहीं हो सकता। इसलिए हमें अपने समाज को हर वक्त इस प्रकार तैयार रखना चाहिए कि फौज के सिपाहियों की तरह, इच्छानुसार, जब जैसी जरूरत पड़े, हम समाज की उसी तरह, उसी रूप में, उसी राह से निकालें।"[3]

रूढ़िवाद से छुटकारा पाने की आवश्यकता पर बल देते हुए निराला ने लिखा :

"यदि ज्ञान-रहित कर्मों की कवायद की गृहणियों के हक में है, तो इससे उन्हें कोई फायदा नहीं पहुँच सकता और यह जानी हुई बात है कि 'भरत' के

१. 'सुधा', फरवरी,'३०, संपा० टि०-१३
२. 'सुधा', नबम्बर,'२९, संपा० टि०-१२
३. 'सुधा', जून,'३०, संपा० टि०-१०

नाम के जप से किसी का भरण-पोषण नहीं हो सकता। इसके लिए काम करना चाहिए। उसी तरह केवल आग में घी जलाकर वायुशोधन करते रहना मूर्खता ही है, कारण पहले के इतना अब यहाँ दूध-घी नहीं होता। जहाँ आदमियों को घी-दूध खाने को न मिलता हो, वहाँ वायु-शुद्धि से रक्त-शुद्धि अवश्य ही अधिक महत्त्व रखती है और जबकि बगीचा लगा लेने से, धूप आदि के जलाने से भी वायु शुद्ध हो सकती है।"[१]

धर्मनिरपेक्षतावादियों की तरह निराला धर्म को मनुष्य के भीतरी प्राणों की भावना मानते थे, किन्तु उनकी तरह निराला धार्मिक अन्ध विश्वासों के प्रति मौन नहीं रहते। वे उसका विरोध करने के लिए मुखर हो उठते हैं। निराला ने प्रगतिशील राष्ट्रों के रूढ़िविरोधी अभियान को लक्ष्य करके लिखा :

"इस धार्मिक पाश से छुटकारे की आवाज बुलंद हो रही है। ईसाई गिरजे से नफरत करने लगे, मुसलमानों ने मस्जिदें ढहा दीं, चीनियों ने चोटियाँ काट डालीं। पर हमारे देश में शिखा (चोटी) का झंडा उसी तरह फहरा रहा है। इस झंडे के नीचे जितनी बुराइयाँ हुईं, सब उसी तरह जी रहे हैं"[२]

आधुनिक राष्ट्र का निर्माण करने के लिए भारतवासियों के विचारों में आमूल परिवर्तन आवश्यक है। पराधीनता का कारण है अज्ञान। जो मन से गुलाम है, वह राजनीतिक रूप से जल्दी गुलाम बन सकता है। पूर्ण स्वाधीनता के लिए ज्ञान के प्रकाश में आँखें खोलना अत्यन्त आवश्यक है। निरालाजी ने लिखा है :

"विद्या ज्ञान है। ज्ञान का प्रकाश मार्जन। इससे मन और बुद्धि प्रखर होती है, चमकती है, जैसे अस्त्र शान पर। हमारी पराधीनता का कारण अविद्या है।"[३] "ज्ञान कभी भी पराधीन नहीं रह सकता। बल्कि यदि एक ही शब्द में स्वाधीनता की परिभाषा की जाये तो वह ज्ञान ही होगा।"[४]

लड़कियों की शादी कम उम्र में कर देना चाहिए–इसके समर्थन में पंडितों की एक सभा हुई। निराला ने उसका परिहास करते हुए लिखा :

"आठ वर्ष की बालिका के विवाह से बैकुंठ में अकुंठित गति प्राप्त करने वाले पंडितों ने खूब खुलकर शास्त्रार्थ किया और सिद्ध भी कर डाला कि बिना

---

१. 'सुधा', जुलाई, '३०, संपा० टि०–४
२. 'सुधा', जुलाई, '३०, संपा० टि०–४
३. 'सुधा', जुलाई, '३०, संपा० टि०–५
४. 'सुधा', फरवरी, '३०, संपा० टि०–१३

आठ साल की लड़की का विवाह किए हिन्दू धर्म की रक्षा हो नहीं सकती। समाज के अंग से यह पंडित पाप जब तक दूर न होगा, तब तक समाज की शिशुता से यौवन की ज्योति नहीं निकल सकती। लोग इसी तरह पुस्तकों के पन्नों में स्वतंत्रता और धर्म की तलाश करते फिरेंगे, मनुष्य के विचारों और प्रकृति में नहीं।"[१]

निराला का मत था कि समाज के पुनर्गठन से धर्म के नाश होने का डर नहीं है :

"वीरों, छोटों को अपने बराबर कर लेने से बड़ा धर्म और कौन सा है ? जो बड़ा है, वही दूसरे को विद्या देकर, धन देकर, सहानुभूति देकर अपने बराबर कर सकता है। जो स्वयं छोटा है, वह क्या करेगा ?"[२]

निराला ने आचार्य शंकर की विचारधारा को मस्तिष्क-धर्म कहा, रामानुजाचार्य प्रवर्तित विचारधारा को हृदय-धर्म बताया। भक्ति-आंदोलन का विरोध करनेवाली धार्मिक कट्टरता की आलोचना करते हुए निराला ने भक्त शंकर के बारे में लिखा था :

"जिसके तटों पर अनादिकाल से ऋषियों ने तपस्या की, जिसके दृश्यमान से हृदय पवित्र होता है, उसका बहिष्कार धर्म-भावना के मूल पर ही कुठाराघात है।"[३]

उधर कबीर के बारे में निराला का मत था--"हिन्दी साहित्य का ज्ञान कांड यदि कबीर के साहित्य को कहें तो अत्युक्ति न होगी।"[४]

सामाजिक व्यवहार के लिए उसका सारतत्त्व है–मनुष्य मात्र की समानता। हिन्दू समाज में द्विज और शूद्र की समानता, भारतीय समाज में हिन्दू और मुसलमान की समानता। इसलिए निराला ने यह लिखा था :

"व्यक्ति के नियामक नहीं, उनकी तारीफ होगी, पर उनके पीछे जान देना मनुष्यता से दूर समझा जायेगा। कारण, हर मनुष्य की वही कीमत है, जो राम-कृष्ण और ईसा-मुहम्मद की थी।"[५]

---

१. 'सुधा', मई, '३०, सं० टि०–७

२. 'सुधा', १६ अगस्त, '३३, संपा० टि०–१

३. 'सुधा', सितम्बर, '३२, संपा० टि०–२

४. 'सुधा', दिसम्बर '३२, संपा० टि०–१

५. 'सुधा', सितम्बर, '३४, संपा० टि०–१

निराला की इन सम्पादकीय टिप्पणियों में उनका मानवतावाद प्राचीन रूढ़ियों और अंधविश्वासों को निर्मूल करने तथा समाज को नये सिरे से गठित करने में सक्षम था। इस उदार मानवतावाद के आधार पर वह राष्ट्रीय एकता को दृढ़ करना चाहते थे।

राष्ट्रीय एकता और मुसलमानों को लेकर निराला ने 'सुधा' में बहुत सारी टिप्पणियाँ लिखीं। हिन्दू-मुसिलम वैमनस्य को बढ़ावा देनेवाले साम्प्रदायिक प्रचार का विरोध करते हुए निराला ने लिखा :

"सामाजिक और राजनीतिक जटिल प्रश्नों की तरह भारत को धार्मिक प्रश्न का भी सन्तोषजनक उत्तर देना है। हमारे यहाँ तमाम कमजोरियों और संकीर्णताओं की जड़ में विविध धर्म भावनायें ही हैं, खासकर हिन्दू और मुसलमान धर्म में। आर्य समाज द्वारा विचारों की व्यापकता को बहुत कुछ सहायता प्राप्त हुई है। पर जिस ढंग से वैदिक धर्म का प्रचार किया गया है, उसमें कट्टरता प्रधान है। विचारवान् धर्मों में सार भाग देखते हैं। सभी धर्मों के मूल तत्त्व मिलते-जुलते हैं। आचारों के साथ धर्म के ऊँचे अंश का कोई सम्बन्ध नहीं। वेद के ज्ञानकाण्ड के साथ मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि अपने-अपने धर्म के भीतर से सहमत हैं। वेद के मानी भी किसी पुस्तक विशेष के नहीं, वह ज्ञान रूप होकर सभी जातियों में सम्मिलित है। वेद को लेकर विवाद करने पर वेदज्ञों की ही मर्यादा नष्ट होती है, वेद अपने अर्थ में पूर्ण हैं।"[१]

निराला ने तत्कालीन दंगों को लक्ष्य करके भी टिप्पणियाँ लिखी हैं :

"कृष्ण जी का जुलूस यदि निकले तो कोई क्षति नहीं होती, रामलीला में यदि मनुष्य बन्दर बन कर न नाचे, तो मनुष्यता की रक्षा ही होती है, धन भी बचता है। उधर मुसलमानों के देश में, कुछ दिन तक छपता था, मस्जिदें तोड़ी गईं और मुसलमानों के ही हाथों।"[२]

निराला एक बात को अकसर दुहराते हैं कि हिन्दू-मुसलिम वैमनस्य का सम्बन्ध हिन्दुओं की अपनी वर्णगत संकीर्णता से है। भारत की सम्पदा यूरोप गई, इस तरह वैश्य शक्ति का लोप हुआ, राज्यसत्ता अँगरेजों के हाथ में आयी। इस तरह क्षत्रियत्व नष्ट हुआ, ज्ञान-विज्ञान में यूरोप आगे बढ़ता गया, इससे ब्राह्मण शक्ति भी लुप्त हुई। निराला ने इसी को निम्नांकित टिप्पणी में दिखाया है :

---

१. 'सुधा', सितम्बर, '३२, संपा० टि०–७

२. 'सुधा', सितम्बर, '३४, संपा० टि०—१

"हम इस बात को न समझकर, ब्राह्मण बनकर, भारतीय संस्कृति के एकच्छत्र सम्राट् होकर भाइयों पर खोखली भारतीयता का रोब गाँठत रहे। अब उस भारतीयता से कैसा फल पैदा हुआ, वह सामने है, चखिए।"[1]

हिन्दू-मुसिलम एकता के बारे में निराला की स्थापना यह थी :

"हिन्दू-मुसलमानों के उस संघर्षकाल का बहुत कुछ मशाला आज की जातीयता की इमारत में लगने लायक है, यदि कुशल हाथों से प्राप्त हो। उन दिनों के धार्मिक पंथों में से किसी एक में रहनेवाला साहित्यिक यह उत्तरदायित्व नहीं ले सकता, क्योंकि वह पक्षपात-दोष से बच न सकेगा। जनता को धार्मिक पक्षपात से मुक्त कर सत्य के सीधे मार्ग पर ले जाना साधारण शक्ति का काम नहीं है।"[2]

हिन्दू और मुसलमानों की एकता से राष्ट्रीयता की स्थापना के बारे में निराला का विचार है :

"यूरोप के जर्मनी, फ्राँस, इटली आदि देशों में यदि एकता है तो भारत में उससे एक इंच भी कम नहीं। यदि विभिन्न जातियों के होते हुए भी वे देश एक राष्ट्र की दृढ़ता पा सकते हैं, तो हिन्दुओं, मुसलमानों (दोनों ही आर्य और अनार्य भी हैं) के इस देश में भी वही राष्ट्रीयता स्थापित हो सकती है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।"[3]

मुसलमानों के अन्दर इतनी कट्टरता है कि वे भारत-राष्ट्र का अंग नहीं बन सकते। इसके बारे में निराला का मत है :

"हिन्दुओं की संकीर्णता के कारण ही मुसलमान इस देश में संकीर्ण हो रहे हैं। यदि फारस में वे बढ़े-चढ़े विचारों के हैं, रूस में उनका चोला बदल गया है, टर्की में उनका कुछ और ही रूप हो रहा है, तो कोई कारण नहीं कि यहाँ के मुसलमान भी हिन्दुओं के बढ़ते हुए विचारों और समाज-सुधारों को देखकर अपना सुधार न करें।"[4]

इन सम्पादकीय टिप्पणियों में निराला ने यह बताया कि समाज में ऊँच-नीच का भेद मिटाकर, अंधविश्वास और रूढ़ियों से मुक्त होकर व्यापक मान-

१. 'सुधा', १६ अगस्त, '३३, संपा० टि०-१
२. 'सुधा', १ सितम्बर, '३३, संपा० टि-१
३. 'सुधा', जून,'३०, संपा० टि०-६
४. 'सुधा', जनवरीं,' ३३

वतावाद की भूमि पर हिन्दू और मुसलमान अपनी राष्ट्रीय एकता दृढ़ कर सकते हैं।

भाषा और राष्ट्र के सम्बन्ध में भी निराला ने 'सुधा' में सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखी थीं। निराला ने इस मत का विरोध किया कि भारत में राष्ट्रीयता की भावना अँगरेजी राज की देन है :

"अँगरेज कहते थे कि चूंकि भारतवर्ष कोई एक देश नहीं है, अनेक देशों का समुदाय है, यहाँ न एक भाषा है और न एक प्रकार का समाज, अनेक छोटी-बड़ी भाषाओं के रहते भारतवर्ष उन्नति नहीं कर सकता, इसलिए सबको अँगरेजी पढ़नी चाहिए। अँगरेजी के हिमायती अब तक कुछ ऐसी ही दलील पेश करते रहे हैं। आश्चर्य तो यह है कि इनमें कुछ तो इसी देश के निवासी 'भारतीय' हैं। हमें उनकी बात पर हँसी भी आती है और कष्ट भी होता है। भारतवर्ष एक देश नहीं है, अनेक देशों का समुदाय है, यह वे ही कह सकते हैं जिन्हें यहाँ के इतिहास का कुछ पता नहीं है, जिन्हें यहाँ की सभ्यता और संस्कृति की नींव का ज्ञान नहीं। परन्तु जो यह जानते हैं कि प्राचीन भारत ने एक सूत्र में गूँथकर अपना सर्वतोमुखी विकास किया है, जिन्हें यह मालूम है कि इस देश ने सुख और दुःख की परिस्थितियों में एक साथ रहकर काम किया है, विजय की है, तो एक साथ, हारे हैं तो एक साथ, जिनको इसका पता है, राम-कृष्ण, बुद्ध, रामानुज, कबीर, तुलसी आदि सैकड़ों महापुरुष और वैष्णव, शैव, शाक्त आदि अनेक संप्रदाय प्रादेशिक सीमा से ऊपर समस्त देश में, वायु की भाँति, एकरस फैले हैं, वे ऐसे भ्रम में कदापि नहीं पड़ सकते।"[1]

हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने से बँगला या अन्य किसी प्रन्तीय भाषा की हानि न होगी, इस धारणा पर बल देते हुए निराला ने लिखा :

"हिन्दी के रहते हुए भी वे अपनी भाषा का महत्तम विकास कर सकते हैं। सभी प्रान्तीय भाषाओं के सम्बन्ध में यह बात कही जा सकती है।"[2]

निराला ने उपर्युक्त संपादकीय टिप्पणी में राष्ट्रभाषा हिन्दी की सही व्याख्या की है। हिन्दी भाषा के ऊपर जो अनुचित आक्षेप किये गये थे, उनका समुचित उत्तर निराला ने दिया। राष्ट्रभाषा के गौरव के अनुरूप हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने की आकांक्षा उनमें बहुत प्रबल थी।

---

१. 'सुधा', जून, '३०, संपा० टि०-६

२. 'सुधा', १ जुलाई, '३४, संपा० टि०-५

जातीयता और हिन्दी के विषय को लेकर भी निराला ने 'सुधा' में सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखी हैं। 'विचित्रा' वाले सुशीलकुमार बसु के प्रसंग में निराला ने लिखा था कि बँगालियों का अपना एक प्रांत है, इसलिए उनमें प्रान्तीयता है, 'परन्तु हिन्दी भाषा-भाषी तो किसी प्रांत में नहीं रहते। वे तो सर्वत्र हिन्दुस्तान में रहते हैं। अतएव राजनीतिक अथवा साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दुस्तानी मनोवृत्ति यदि कोई वस्तु है, तो बँगाली मनोवृत्ति भी अपना एक अलग अस्तित्व रखती हैं और समय-समय पर उसका परिचय भी हमें मिलता है।"[१]

निराला ने लिखा है कि रंगमंच पर अभिनेताओं का उच्चारण 'हिन्दी जातीयता के बिलकुल प्रतिकूल है' ('सुधा' १ सितम्बर,'३३, संपा० टि०-१)। उर्दू-फारसी के प्रभाव से 'भाषा-साहित्य के भीतर हमारी जाति टूटी हुई विकलांग हो रही है।"[२]

निराला ने यह भी लिखा था कि 'अपनी भाषा और अपनी श्रेष्ठता का ज्ञान ही यथार्थ मनुष्यत्व है।"[३]

'लखनऊ विश्वविद्यालय और हिन्दी' टिप्पणी ('सुधा', १ दिसम्बर ३३) में निराला ने लिखा था – "यह बड़े-बड़े ताल्लुकेदारों की युनिवर्सिटी कहलाती हैं, जिसमें हिन्दुओं की ही बड़ी संख्या है। पर इन माई के लालों को अपने अन्यान्य आवश्यक कार्यों से इतनी फुरसत कहाँ कि इस ओर ध्यान दें। अवध की हिन्दी आदर्श हिन्दी समझी जाती है, किन्तु उसे विश्वविद्यालय में उचित स्थान प्राप्त नहीं है, क्या यह परिताप का विषय नहीं है ?"

निराला की बड़ी इच्छा थी कि एक फिल्म-निर्माण-केन्द्र हिन्दी प्रदेश में भी हो। बंबई और बँगाल को जो करोड़ों रुपया जाता है, वह यदि बचता तो इस प्रदेश की उन्नति में उसका उपयोग किया जाता। एक फिल्म कम्पनी चलाने की योजना बनी भी थी। उसी प्रसंग में निराला ने लिखा भी था :

"हिन्दी के नये कलाकार प्लाट और कथोपकथन द्वारा इस टाकी-साहित्य को चमका देते हैं। हमें उनसे बातचीत कर ऐसा ही अनुभव होता है। उनमें अच्छे-अच्छे अभिनेता भी हैं, नाटक लिख और खेल भी चुके हैं। देखने में भी

---

१. 'सुधा,' १६ जुलाई,'३४, संपा० टि०-५

२. 'सुधा', १ अक्टूबर,'३३, संपा० टि०-२

३. 'सुधा', जून, ३५, संपा० टि०–२

सुन्दर हैं। लखनऊ संगीत का केन्द्र है। बनारस और बाँदा से भी संतीतज्ञ ले सकते हैं। इनकी तानें विशुद्ध हिन्दी की होती हैं। ग़ज़लियात और ठुमरी वग़ैरह, लखनऊ की भैरवी और बाँदा का जँगला, ये दूसरी जगह इतनी सुन्दर अदायगी के साथ नहीं मिल सकते, विशेषकर हिन्दी के कानों के लिए।" फिल्मों में हिन्दी-प्रदेश का अपना संगीत हो, अपने साहित्य की झलक हो।

"नवीन स्वरों के लिए हमारे साथ नवीन और प्राचीन प्रतिष्ठित कवि हैं ही, जिन्होंने अनेक प्रकार की नवीनता पैदा की है और स्वरों का ज्ञान भी रखते हैं।"[1]

इंदौर के साहित्य-सम्मेलन में 'हिन्दी विश्वविद्यालय' स्थापित करने का प्रस्ताव आया। निराला हिन्दी के भविष्य के सपने देखने लगे। उन्होंने लिखा इस तरह राष्ट्रभाषा को बहुत बड़ा महत्त्व प्राप्त होगा, इसका अभी हम अनुमान नहीं कर सकते। जो हिन्दी अपने प्राचीन गौरव में प्रान्तीय भाषाओं की बड़ी बहन है और आधुनिक प्रगति में दूसरी भाषाओं की गति से अधिक वेगवती हैं, वह अपर प्रान्तों के अहम्मन्य विद्वानों को इस प्रकार पूरा उतरता हुआ उत्तर देगी।"

निराला की इन सम्पादकीय टिप्पणियों में हिन्दी की सयस्या को मूल समस्या मानकर उन पर विचार किया गया था। यह मूल समस्या थी – हिन्दी-भाषी-जाति के विकास की समस्या। वे अन्य भाषाओं की तुलना में हिन्दी का समर्थन करते थे और उन भाषाओं के अस्तित्व को भी स्वीकार करते थे। उनके समय की अधिकांश समस्यायें अभी समाप्त नहीं हो पायी थीं। हिन्दी के उत्थान के लिए निराला के इन विचारों से काफी सहायता मिलेगी।

निराला ने गाँधीवाद और छायावाद के विश्लेषण हेतु 'सुधा' में सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखी हैं। काँग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पारित हुआ। निराला ने उनके कार्य को सराहते हुए लिखा :

"काँग्रेस की वक्तृताओं में पहले महात्माजी अपनी अपार महिमा में मौन ही थे, जैसे वे किसी महान् प्रतिज्ञा को पूर्ण कर रहे हों। जब गत वर्ष समाप्ति पर आ गया और काँग्रेस द्वारा निश्चित किये हुए ध्येय का कोई फल सरकार की ओर से नहीं मिला, तब राष्ट्र के प्राण, संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष में वह कैसा ओज, कैसी अपार महाशक्ति प्रत्यक्ष हुई, इसका जड़ लेखनी द्वारा वर्णन नहीं हो

१. 'सुधा', जून,'३५, संपा० टि०-७

सकता। उस दिन–उसी दिन महात्माजी की अजेय सरस्वती की ओजस्विनी मूर्ति के हमने दर्शन किये। वे निडर ज्योतिर्नयन स्वतंत्रता का आलोक भरते-चमकते हुए. राष्ट्र की प्रसुप्त प्रतिमा को जगा रहे थे। वह वाणी शब्द-बंधों के सहस्रों तरंगों से अबाध उद्वेलित अवरोध तट को बारंबार छाप-छापकर बह रही थी। श्वास के अधोच्छवास के साथ भाषा के बहते हुए तूफान में उस दिन सहस्रों जीवन शरीर के संकीर्ण रेखातट के महाशून्य में उड़ गए थे और स्वतंत्रता का विशाल दृश्य देखा था। उसी दिन मालूम हुआ, इस पराधीन देश में महात्माजी स्वाधीन साँस ले रहे हैं।"[1]

गाँधीजी की गिरफ्तारी का विरोध करते हुए निराला ने लिखा -"बम्बई सरकार ने महात्माजी पर जो लाँछन लगाये हैं, अभी वे किसी मूल्य के नहीं ठहराये जा सकते। कारण, उनका विचार किसी खुली अदालत में नहीं किया गया।"[2]

अछूतोद्धार की चिरंतन समस्या को हल करने के लिए गाँधीजी ने आमरण अनशन प्रारम्भ किया। निराला को फिर गहरी चिन्ता हुई कि इस व्रत में गाँधी जी प्राण न दे दें। गाँधीजी ने इक्कीस दिन का उपवास समाप्त किया। हरिजन समस्या पर सारे देश का ध्यान केन्द्रित हो गया। निराला ने प्राचीनकाल के उपवासकर्ताओं—सेंट पाल, बुद्ध आदि को स्मरण करते हुए लिखा :——महात्मा जी ने अपने गले में फाँसी की रस्सी डाल ली थी, परन्तु हमारे देश के धन्य भाग्य कि प्रकृति ने उनकी रक्षा की। महात्माजी भारत के लिए एक दैवी प्रसाद हैं।"[3]

पं० जवाहरलाल नेहरू और समाजवाद को लेकर निराला ने 'सुधा' में सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखीं। जवाहरलाल नेहरू ने जब युवा शक्ति का नेतृत्व किया, जिससे एक महान् ऐतिहासिक परिवर्तन हुआ। निराला ने उनके व्यक्तित्व के बारे में लिखा, "वह नम्र तथा स्फटिक की तरह स्वच्छ हैं और उनकी सत्यवादिता संदेह के परे है। उनके हाथों से जाति के स्वार्थ की हानि किसी प्रकार नहीं हो सकती।"[4]

वेदान्त और भारतीयता के विषय में भी निराला ने 'सुधा' में सम्पादकीय टिप्पणी लिखी है। उन्होंने ने लिखीं- भारतीय साहित्य संसार से मुँह मोड़कर

---

१. सुधा', फरवरी ३०, संपा०टि०-२

२. 'सुधा', जून ३०, संपा०टि०-२

३. 'सुधा', १६ अगस्त, '३३, संपा० टि०–४

४. 'सुधा', फरवरी, '३०, संपा० टि०–४

विकसित हुआ है, उसका सर्वोत्तम विकास जैसे संसार को देखना ही नहीं चाहता।"[१]

निराला ने ब्रह्म और प्रकृति के विषय में भी 'सुधा' में सम्पादकीय टिप्पणी लिखी – "रूस की तरफ से सबके सब वक्र रहे। परन्तु प्रकृति किसी राजनीतिक या राष्ट्रसंघ की ब्याही हुई हिन्दू बीबी नहीं –वह क्या कहते हैं नायिका–भेद में उसे-वह नायिका है जो स्वतंत्र रहती है।"[२]

हिन्दू–समाज में उच्च वर्णों ने निम्न वर्णों पर अत्याचार किये। परिणाम यह हुआ – "प्रकृति ने दृप्त हिन्दू समाज को जैसी मार, उसके दर्प की प्रतिक्रिया के रूप में दी है, उससे अब सब लोग बराबर जमीन पर आ गए हैं।"[३]

सामाजिक परिवर्तन और साहित्य को लेकर निराला ने 'सुधा' में टिप्पणी लिखी। वे मानते हैं कि उनकी यह शृंगार-साधना संन्यासी की साधना से भिन्न है, फिर भी "किसी अंश में भी इस शृंगार-साहित्य को वेदान्त साहित्य के उपलब्ध ज्ञान के मुकाबले में न्यून नहीं रखा गया।"[४]

यथार्थ को गंभीर दृष्टि से देखने पर जो असुन्दर है, असत् पाप है, वह भी सुन्दर, ग्राह्य और जीवनदायी बन जाता है। निराला ने लिखा–आत्मा से जबकि भले और बुरे का निराकारण नहीं हो सकता, एक ही आत्मा समुद्र में दोनों अमृत और विष की तरह मिले हुए हैं – तब उस विष की परिव्यक्त सघन नीलिमा भी राम की श्याम शोभा बनती है।"[५]

हिन्दी–साहित्य को ऐश्वर्यशाली शक्ति चाहिए। किन्तु लेखक दरिद्र, जनता दरिद्र, भाषा भी दरिद्र, ! "हिन्दी में जो सबसे बड़ी कमी है, वह है कथा-साहित्य में ऐश्वर्य–प्रदर्शन का अभाव। जिस तरह भाषा वैभव–विहीन है, उसी तरह भाव-प्रकाशन और चरित्र भी है वे शक्ति के सौन्दर्य से किरणों के निर्झर की तरह नहीं चमकते।"[६]

---

१. 'सुधा', फरवरी, '३३, संपा० टि० १

२. 'सुधा', अक्टूबर, '३४, संपा० टि०–४

३. 'सुधा', जून,'३० संपा० टि०–१

४. 'सुधा', नवम्बर,'२९ संपा० टि०–१०

५. 'सुधा', १ अक्टूबर, '३३, संपा० टि० १

६. 'सुधा', १६ नवम्बर,'३३, संपा० टि०–१

श्रमिक, जनता और साहित्य के सम्बन्ध पर विचार करते हुए निराला ने लिखा है –"मजदूर और साधारण लोगों का पक्ष क्यों लिया जाए, जब हम यह विचार करेंगे तब इसी से उच्चता साबित हो जायेगी। मजदूरों का पक्ष इसीलिए तो लिया जायेगा कि मजदूरों के साथ न्याय हो, उसे पेटभर खानें को मिले, कष्ट के दिनों के लिए कुछ रखने को भी बच जाए, वे शिक्षित हों समाज, देश, जाति तथा संसार के साथ मिलें, उससे सौहार्द करें। यहाँ इतने से ही देखिए, कला चढ़ती जा रही है –विकसित होती जा रही है, और बड़ी से बड़ी विशालता में परिणत। फिर यदि आज का कोई कवि या साहित्यिक प्रवृत्ति की किसी साधारण वस्तु या विषय को इसी प्रकार परिपुष्ट करता हुआ कला का विकास दिखलाए तो क्या आप ऐसा कह सकते हैं कि इस कार्य से आपके उस कार्य का साम्य न हुआ?"[1]

निराला राजनीति को साहित्य की व्यापक परिधि से पृथक् न मानते हुए लिखते हैं –"साहित्य का राजनीति के साथ उतना ही सम्बन्ध है जितना साहित्य का उसके शाखा–साहित्य से। इससे अधिक महत्त्व एक साहित्यिक कार्यकर्ता उसे देगा, तो साहित्य के सार्वभौमिक विचार से वह लक्ष्य च्युत कहा जायेगा। एक साहित्यिक की दृष्टि में किसी भी समय राजनीति की महत्ता साहित्य की महत्ता से ज्यादा नहीं रही।"[2]

क्रान्ति और साहित्य के सम्बन्ध में निराला जी का कथन अवलोकनीय है:

"क्रान्ति साहित्य की जननी है। नवीनता तभी पैदा होती है और साहित्य का रथ कुछ कदम आगे बढ़ता है। इसे ही जीवन भी कहते हैं। ऋतु के बदलने पर जिस तरह पृथ्वी एक नये रूप से सजती है, उसी तरह क्रान्ति-जन्य नवीनता से साहित्य।"[3]

उन्होंने हिन्दी–साहित्य के आन्तरिक संघर्ष पर भी 'सुधा' में टिप्पणी लिखी है। निराला के शृंगार–विरोध का कारण यह था कि उसमें शृंगार का उत्कर्ष नहीं है। रीतिवादी शृंगार–वर्णन में चमत्कार–प्रेम अधिक, सौन्दर्य-प्रेम कम है। रवीन्द्रनाथ रस में डूबते हैं, बिहारी तटस्थ रहते हैं, "बिहारी चित्रण–कुशलता

---

१. 'सुधा', १६ जून,'३४, संपा० टि०–१
२. 'सुधा', अक्टूबर,'३०, संपा० टि०–४
३. 'सुधा', फरवरी '३५, संपा० टि०–१७

दिखाने की फिक्र में रहते हैं, परन्तु रवीन्द्रनाथ अपने विषय में मिल जाते हैं।" ('कविवर बिहारी और रवीद्र,' चाबुक, पृ० १७) हिन्दी आलोचना की सीमायें वास्तव में रीतिवाद की सीमाएँ हैं, इसलिए "केवल रस, अलंकार और नायिका-भेद की सीढ़ियों से चढ़ना-उतरना काव्य-ज्ञान का प्रकृष्ट परिचय नहीं।"[१]

निरालाजी की मेधा-शक्ति इतनी सामर्थ्यवान् है कि वह काव्य को भावोच्छ्वास मानने को तैयार नहीं। साहित्य में आलोचना के महत्त्व की चर्चा करते हुए निराला ने भावोच्छ्वास मात्रवाली कविता का विरोध करते हुए लिखा-"हृदय का महत्त्व लेकर निकलनेवाली कविता भी यदि विचार और श्रृंखला से नहीं सम्बद्ध तो शैशव-संलाप की तरह भावोच्छ्वास मात्र है, उससे साहित्य को कोई बड़ी प्राप्ति नहीं हो सकती।"[२]

आलोचना के महत्त्व के बारे में निरालाजी ने कहा है-"आलोचना साहित्य का मस्तिष्क है। अतः साहित्य के विकास का श्रेय अनेक अंशों में उसे ही प्राप्त है।"[३]

निरालाजी चाहते थे कि आदर्श आलोचक कवि अधिक समर्थ हो। इसलिए कहते हैं -"काव्य की बारीकियाँ समझाने के लिए आलोचक को कवि से अधिक समर्थ होना चाहिए।"[४]

गद्य के बारे में उनकी धारणा है कि "गद्य जीवन-संग्राम की भी भाषा है।"[५]

छायावादी कल्पनाशीलता के विषय में निराला का विचार है -"कविता लिखने के समय जब चित्त चन्द्र को अधिक प्रकाशमान करना पड़ता है, तब भाषा-शब्दों को यथाशक्ति प्रांजल कर देने की आवश्यकता है। शब्दों के सूर्य की किरणें चित्त को और द्युतिमान कर देती हैं, प्राचीन गौरव के प्रति लोगों की श्रद्धा आकर्षित करने का विचार हो, तो कविता की भाषा खुले हुए पुष्प की तरह पूर्ण विकच होनी चाहिए।"[६]

---

१. 'सुधा', जुलाई'३३, संपा० टि०-१
२. 'सुधा', जुलाई,'३३,संपा० टि०-१
३. 'सुधा', जुलाई,'३३, संपा० टि०-१
४. 'सुधा', अगस्त,'३२, संपा० टि०-१
५. 'सुधा', १ अक्टूबर,'३३, संपा० टि०-२
६. 'सुधा,' जनवरी,'३० संपा०टि०-१०

कठिन भाषा, जो संदर्भ के अनुसार उचित हो, अभी लिखी नहीं जाती, "अभी मुश्किल और ठीक-ठीक मुश्किल भाषा लिखने की दो-एक को छोड़कर किसी भी साहित्यिक को तमीज नहीं।"[१]

जैसे आलोचना कवि-कर्म का अभिन्न अंग है वैसे ही भाषा साहित्यकार की रचना-प्रक्रिया की अभिन्न अंग है। "भाषा बहुभावात्मिका रचना की इच्छा मात्र से बदलने वाली देह है।"[२] भाव और भाषा का सम्बन्ध प्राण और देह का सम्बन्ध है।

राजनीति और दर्शन की तरह इन टिप्पणियों में भी निरालाजी ने साहित्य-सम्बन्धी विचारधारा के क्षेत्र में जो संघर्ष किया उसका महत्त्व न केवल उनके युग के लिए ही था वरन् आज के लिए भी है। निराला की साहित्य-सम्बन्धी विचारधारा यद्यपि अन्तर्विरोधों से मुक्त नहीं है तथापि उसके प्रवाह की मूल दिशा का पता लगाना भी बहुत कठिन नहीं है। यह प्रवाह घनिष्ठ रूप से उनके काव्यसर्जन और कथा-लेखन से सम्बद्ध है।

'सुधा' में प्रकाशित उनकी सम्पादकीय टिप्पणियों में राजनीतिक, धार्मिक, अछूतोद्धार, हिन्दू-मुसिलम एकता तथा साहित्य से सम्बन्धित अनेकानेक समस्याओं का समाधान किया गया है। इन सम्पादकीय टिप्पणियों का सुचारु रूप से अध्ययन करने पर हमें उनकी आलोचना-शक्ति के विषय में काफी कुछ जानकारी होती है।

'सुधा' के जिन अंकों में निराला की कविताएँ या लेखों का प्रकाशन हुआ है उनकी यहाँ एक तालिका प्रस्तुत की जा रही है :

स० लेख या कविता	वर्ष, खण्ड, माह, सन् /संवत्	पृष्ठ
१. रेखा (कविता)	१, २, फरवरी-जुलाई, १९२८	२५५
२. कविवर श्री चंडीदास	१, २, "	२०५
३. छत्रपुर में तीन सप्ताह	" "	६४१
४. हिन्दी कविता-साहित्य की प्रगति	" "	१८६

१. 'सुधा', अक्टूबर,'३२, संपा० टि०-१

२. 'सुधा', १ अक्टूबर '३३, संपा० टि०-२

सं०	लेख या कविता	वर्ष, खण्ड, माह, सन् /संवत्	पृष्ठ
५.	विस्मृत भोर (कविता)	२, १, श्रावण—पौष, अगस्त, १९२८	७८२
६.	कला के विरह में जोशीबंधु	" " "	६९२
७.	विद्यापति और चंडीदास (तुलनात्मक समालोचना)	" " "	८६
८.	बंगाली कवि गोविंददास की कुछ कविता	२, २, फरवरी-जुलाई, १९२९	३८९
९.	गीत	३, १, अगस्त, १९२०-३०	३२५, ३७८
१०.	महाकवि रवीन्द्र की कविता	" "	२
११.	मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचारसाम्य	" "	३७८
१२.	समाज-सुधार	" "	११८, २३२, ३४९ ४६७, ५८८, ६९९
१३.	गीत	३, २, फरवरी-जुलाई, १९३०	५०१, २६५ ३१२, ३९७ ४९३, ६६४
१४.	मनसुखा को उत्तर	३, २, फरवरी, १९३० संख्या-१	७२
१५.	ज्योतिर्मयी (कहानी)	३, २, फरवरी-जुलाई १९३०	१५२
१६.	पद्मा और लिली (कहानी)	३, २, " "	४३
१७.	पुस्तक-समीक्षा	" " "	९८
१८.	गीत	४, १, अगस्त-जनवरी, १९३०-३१	९१, ४३८ ६७०
१९.	पद	" " "	७२५
२०.	अपरा (सामाजिक उपन्यास)	" " "	९, २०१, ३६६ ५०१, ६४३, ७७५
२१.	गीत	५, २, फरवरी-जुलाई, १९३२	७१३
२२.	समाज	" " "	६९७
२३.	अर्थ (कहानी)	६, १, सित॰, १९३२ संख्या-२	१४७
२४.	एक बात (कहानी)	६, १, अगस्त-जनवरी १९३२-३३	४३५

सं०	लेख या कविता	वर्ष, खण्ड, माह, सन् /संवत्	पृष्ठ
२५.	साहित्यिकों तथा साहित्य प्रेमियों से निवेदन	६, १, मार्गशीर्ष दिस० १९३२ संख्या-५	८४१
२६.	गीत	६, २, फरवरी-जुलाई १९३३	२७३
२७.	प्रेमिका परिचय (कहानी)	" "	५२९
२८.	भक्तजी और प्रकृति निरीक्षण	६, २, जुलाई, १९३३ संख्या-६	५५६-५५८
२९.	गीत	७, १, अगस्त-जनवरी, १९३३-३४	१६३,८४३
३०.	आवारा (कहानी)	" "	३
३१.	न्याय (कहानी)	" "	३३९
३२.	निरुपमा (उपन्यास)	" "	९५३
३३.	परिवर्तन (कहानी)	" "	१६७
३४.	स्वामी शारदानंदजी महाराज और मैं	" "	५९५
३५.	हिरनी (कहानी)	" "	८३
३६.	गीत	७, २, १ मार्च, १९३४	९७
३७.	देवी (कहानी)	७, २, फरवरी-जुलाई, १९३४	७
३८.	चतुरी-चमार	" "	३२७
३९.	राजासाहब को ठेंगा दिखाया	७, २, १ जुलाई, १९३४	५१४
४०.	शरद् के प्रति (कविता)	८, १, अगस्त-जनवरी, १९३४-३५	१७७
४१.	भक्त और भगवान् (कहानी)	" "	४०२
४२.	श्री चकोरीजी की कविता	८, १, संख्या ४, ४ नवम्बर १९३४	३२०-२५
४३.	सफलता (कहानी)	८, १, अगस्त-जनवरी, १९३४-३५	२०१
४४.	तुलसीदास (कविता)	८, २, फरवरी-जुलाई, १९३५	२७, १२५ २१७, ३४३ ५२९
४५.	दान (कविता)	" "	४३६
४६.	पं० बनारसीदास का अँगरेजी ज्ञान	" "	३४९

सं० लेख या कविता	वर्ष, खण्ड, माह, सन् /संवत्	पृष्ठ
४७. गीत	९, १, श्रावण–पौष, अगस्त–जनवरी, १९३५–३६	४४०
४८. सरोज–स्मृति	,, ,,	६५७
४९. गीत	१०, २, फरवरी–जुलाई, १९३७	३६९
५०. तोड़ती पत्थर	,, ,,	२७४
५१. कविता के प्रति	११, २, फरवरी-जुलाई १९३८	१०७
५२. नासमझी	,, ,,	४७७
५३. होली	,, ,,	२२४
५४. गीत	१३, १, अगस्त, १९३९–४०	४१४
५५. भगवान् बुद्ध के प्रति	१३, २, फरवरी–जुलाई, १९४०	५४५
५६. गीत	१४, १, अगस्त–जनवरी, १९४०–४१	४४३

उपर्युक्त रचनाओं और सम्पादकीय टिप्पणियों के आलोक में यह निष्कर्ष निरूपित किया जा सकता है कि 'सुधा' में निरालाजी का बहुविध साहित्य प्रकाशित हुआ है। उनके चिंतन और लेखन का प्रामाणिक परिचय प्राप्त करने के लिए ये रचनाएँ सदा–सर्वदा अपरिहार्य हैं।

निराला-संपादित लघु पत्र : 'रँगीला'

'मतवाला' के सम्पादन को त्यागने के पश्चात् निराला लखनऊ चले आये। उनको कलकत्ता छोड़े हुए अभी पौन वर्ष ही हुआ था कि इसी बीच रामलाल गर्ग तथा निराला के कुछ कलकतिया मित्रों की सहायता से एक साप्ताहिक पत्र निकालने की योजना बनायी गयी। इस बार वे प्रधान सम्पादक के रूप में निमंत्रित किये गये थे। इस पत्र को निकालनेवाले निराला के जमाता श्री शिवशेखर द्विवेदी थे। यह साप्ताहिक पत्र १४, मदन चटर्जी स्ट्रीट से छपता था। यह पत्र दूसरा 'मतवाला' बनकर लोगों के सामने आना चाहता था। सम्भवतः निराला ने इसका नाम 'रँगीला' रखा हो। इसमें 'मतवाला' की भाँति ही व्यंग्य-विनोद-विमर्ष-विन्यास की नीति का पालन होता था। निराला के सम्पादन में 'मतवाला' की तरह उनका पत्र 'रँगीला' भी लोकप्रिय हो जायेगा, ऐसी आशा थी। निराला से अनुमति लिए बिना उसकी घोषणा कर दी गयी। सम्पादकरूप में निराला का नाम विज्ञापित कर दिया गया। 'मतवाला' में लिखनेवाले जहाँ अनेक लेखक थे, वहाँ 'रँगीला' के सम्पादक-लेखक-प्रूफरीडर अकेले निराला ही थे। भिन्न-भिन्न नामों से एक ही लेखक की सामग्री पत्र में दे दी गयी।

'रँगीला' ५७, बाँसतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता से निकलता। 'रँगीला' का सम्पादन करते हुए निराला ने जयशंकर प्रसाद एवं बाबू शिवपूजनसहाय को कुछ पत्र लिखे, जो उद्धृत किए जा रहे हैं :

७५. जयशंकर 'प्रसाद' को

'रँगीला'
हास्य-रस-प्रधान हिन्दी साप्ताहिक

५७, बाँसतल्ला स्ट्रीट,
कलकत्ता
२३-५-१९३२

प्रिय बाबू साहब,

मैंने आपको नहीं लिखा। कई कारण हैं। आपने भी मुझे नहीं लिखा। मुमकिन है मैंने गलती की हो। 'रंगीला' मेरे मित्रों की हठवादिता का

रूप है । मुझे उसके प्रकाशित होने की खबर हुई पत्रों में मेरे सम्पादकत्व का विज्ञापन छप जाने के बाद । परिस्थिति सँभालने आया तो प्रकाशन की नौबत आयी। कुछ भेजिए ५/६ रोज़ में ।

आपका
निराला

७६, शिवपूजनसहाय जी को

'रँगीला'
हास्य-रस-प्रधान हिन्दी साप्ताहिक

५७, बाँसतल्ला स्ट्रीट,
कलकत्ता—२३-५-१९३२

प्रिय शिवपूजन जी,

मित्रों ने ढिठाई की । बिना पूछे रँगीला का डिक्लरेशन किया। बिना पूछे पत्रों में मुझे भविष्य सम्पादक छापा । मालूम होने पर अनिच्छित मुझे आना पड़ा, आगे राम मालिक है । पत्र शीघ्र निकलेगा, इस शनि के बाद वाले शनि को । कुछ शीघ्र भेजिये । इति ।

आपका,
निराला

जयशंकर 'प्रसाद' को

'रँगीला'
हास्य-रस-प्रधान हिन्दी साप्ताहिक

५७, बाँसतल्ला स्ट्रीट,
कलकत्ता
६-६-१९३२

प्रिय बाबू साहब,

कुछ भेजिये अपनी सम्मति के साथ । तीसरे अंक को देखकर सम्मति न दीजिये । बीमार रहकर लिखा है यह अंक । दूसरे में स्टैण्डर्ड घटा दिया है बाज़ार देखकर । फिर भी बिक्री अच्छी नहीं, किसी अखबार की नहीं। ४थे में कोशिश करूँगा । कुछ आप लोगों का भी सहारा मिल जायेगा । शिवपूजनजी कुछ नहीं भेज रहे हैं । अकेला हूँ, सब विषय हर हफ्ते अकेला कहाँ तक पूरे करूँ ? छापे की गलतियाँ भी होती हैं । प्रेस अपना नहीं, प्रेस की मशीन अपनी नहीं । अर्थाभाव ऊपर से । अपनी इच्छा की मैंने प्रतिकूलता की मित्रों के अनुकूल होने के लिए । अब देखूँ, कब तक गुण खींचता हूँ । आप प्रसन्न होंगे ।

आपका,
निराला

पता-बाबू जयशंकर जी प्रसाद
गोवर्द्धन सराय, बनारस सिटी ।

इसका प्रथम अंक शनिवार, ज्येष्ठ कृ० ६, संवत् १९८९, ता० ४ जून, १९३२ को निकला । इसका मुखपृष्ठ 'मतवाला' की भाँति एक लाल कागज पर छपा । शिव के स्थान पर प्रकृति पुरुष कृष्ण का बाँसुरी बजाते हुए चित्ताकर्षक रेखाचित्र प्रकाशित किया गया जिसे देखकर 'मतवाला' के नटराज का भ्रम हो जाता था । निराला ने अपने वेदान्ती मन से मोटो लिखा :

'पुरुष-प्रकृति तम ज्योति दिवस-निशि कल्प-तल्प पर ।
एक रँगीला रूप खिला, सब विश्व चराचर ।।'

इसका वार्षिक मूल्य तीन रुपया था और एक प्रति का एक आना । पहले ही पृष्ठ पर महाकवि जयशंकर प्रसाद की प्रसिद्ध कविता 'बीती विभावरी जाग री' प्रकाशित हुई ।

सम्पादक—पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

प्रति फौवारा – वार्षिक फौवारे ३)

गीत

(कविवर श्रीयुत बाबू जयशंकर 'प्रसाद')

बीती विभावरी जाग री !
अम्बर पनघट में डुबो रही–
तारा-घट ऊषा नागरी ।

खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा;
लो यह लतिका भी भर लाई–
मधु मुकुल नवल रस-गागरी ।

अधरों में राग अमन्द पिये,
अलकों में मलयज बन्द किये
तुम अब तक सोई है आली
आँखों में भरे विहाग री !

इस प्रकार निराला कलकत्ता लौटकर पुनः एक बार पत्रकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए और वह भी प्रधान संपादक के रूप में । 'मतवाला' में की गई उनकी सेवायें कलकत्तावासियों को याद थीं । इसलिए सबको यह पूरा विश्वास था कि यह पत्र खूब चलेगा ।

निराला ने इस पत्र में प्रकाशनार्थ रचनाएँ भेजनेवालों से कहा –"जोंक का जरूर ख्याल रहे जो बेमालूम बैठती है और बहुत ज्यादा चूसती है, नाग और बिच्छू लेख नहीं छपेंगे जिनमें जान को खतरा है।"

'मतवाला' के 'चाबुक' की तरह निराला ने इसमें भी 'दहाड़' स्तम्भ का प्रकाशन किया। स्तम्भ के ऊपर एक अपलक दृष्टि से निरखते हुए शेर का रेखाचित्र अंकित होता था। प्रथम अंक के 'दहाड़' स्तम्भ को हम ज्यों का त्यों उद्धृत कर रहे हैं :

"कविता के तख्ते-नशीं कविवर रवीन्द्रनाथ कभी-कभी ऐसी बेपर की उड़ाते हैं, जैसे प्रलाप के सभी समझदार उनके शब्दों के जाल में फँस गये हों। आजकल सत्य की तरह सुलभ और इन्द्रजाल की तरह बृहत्तर वस्तु दुनिना में कुछ नहीं। रवीन्द्रनाथ जब इन दोनों के बल पर अपने अधिकार के हीरों की थैली खोलते हैं, उस समय केवल शब्दों और वाक्य-भाव को लेकर मुग्ध हो पश्चात्-लग्न लोग भले ही मरीचि की मरीचिका में भूल जायँ,साक्षात् सूर्य के साथ रहने वाले उससे अलग हो चलनेवाले रूपों और प्रगतियों को तत्काल समझ लेते हैं। और यह ज्ञान उन्हें समझाने से पहले ही रहता है कि हीरा और मरीचिका के सौन्दर्य, मोह और प्रकाश तीनों का परिचायक सूर्य ही है। जेठ के 'प्रवासी' में कविवर रवीन्द्रनाथ के कुछ पत्र निकले हैं। एक खास मतलब के लक्ष्य पर साधारण लोग भी सत्य ही कहते हैं, उसकी अवधारणा-भूमि भले ही निम्न कोटि की हो, फिर रवीन्द्रनाथ-जैसे महाकवि, अपराजेय शक्ति लेखक एक खास मतलब छोड़ देंगे, ऐसा कोई उत्तरदायी साहित्यिक नहीं कह सकता। एतराज वहाँ अवश्य होता है, जहाँ स्वर में भाव की जगह आवाज ही अधिक ऊँची सुन पड़ती है। रवीन्द्रनाथ के आलोच्य पत्र में यही दोष है। मैं उनकी आवाज की उच्चता के अनुकूल ही उसमें भाव पकड़ना चाहता हूँ, जिसकी मुझे शास्त्रों और विचारों के अनुसार उनके पत्र में त्रुटि देख पड़ती है।"

एक जगह वे लिखते हैं – 'आदमी की पूर्णता शतदल-पद्म की तरह है। उसके विकास का अन्त नहीं।' अर्थात् कमल जिस तरह सभी भंगिमाओं से खिलता है, देखिये, कोई सीधे आकाश की ओर सरोवर के जल की ही तरह, कोई मराल की ग्रीवा की तरह ईषत् तिर्यक तट की ओर, कोई जीवन-रहस्य की खोज में योगी की तरह अपने कारण-जल की ओर देखता रहता है, उसी तरह मनुष्य का विकास भी सार्वभौम है।"

फिर लिखते हैं–"साधारणतः जिसे आध्यात्मिक साधना कहते हैं, उसे जब हम लोग लोभ की सामग्री बना लेते है तब प्रकाश पाने के लिए एक झरोखा छोड़कर और सब झरोखे चुनवा देने का उत्साह पैंदा होता है। इस तरह के गुहावास के संन्यास को मैं नहीं मानता, गुहा के बाहर विराट् संसार को मैं गुहा से ज्यादा सत्य समझता हूँ। इसीलिए, किसी खास आध्यात्मिक गुहा के भीतर पैठने पर मुझे परमार्थ की प्राप्ति होगी, ऐसा लोभ यदि ख्याल में मुझे कभी जकड़ ले तो कुछ ही समय में मैं ऊब जाता हूँ, उससे नि:सन्देह निकल आऊँगा।"

"पहली उक्ति सब तरह की प्रसार-पुष्टि का सूक्ष्म रूप है, दूसरी उसकी व्याख्या। पर यह कबीरदास की निरर्थ उलटवासी हो गई है। कारण, एकहि साधे सब सधै, सब साधे सब जाय', इस उक्ति का भी विरोध नहीं हो सकता, उसी शतदल-विकास के सूत्राधार पर। कलकत्ता देखने के लिए एक ही मानूमेण्ट का निर्माण अदूरदर्शिता नहीं। रवीन्द्रनाथ की दलील यह असर जरूर रखती है कि समझ के बच्चे उनके साथ हो जाते हैं, क्योंकि वे भावों के खिलौना–पसन्द आदमी हैं, और भटकते हुए भटकना ही सबसे बड़ी बात समझते हैं।"

"जिस तरह कविवर से मिलने के लिए जब लोग आते हैं, तब अपनी–अपनी राह से होकर ही आते हैं, एक आदमी एक ही वक्त सब राहों से होकर नहीं आ सकता, उसी तरह यदि किसी का एक ही राह से विकास हो और वह उसकी चरम सीमा हासिल कर सके तो वह वहाँ अनेक राहों से पहुँचे हुए सभी महापुरुषों के बराबर है, और सबके ज्ञान तथा पथ कार्य का समर्थक, समझदार। यही शतदल-विकास की सार्थकता है। सीधा खिला हुआ कमल भी पूर्ण विकसित है और झुककर खिला हुआ भी पूर्ण विकसित, उतना ही बड़ा, वैसा ही विकसित। रवीन्द्रनाथ सीधे खिले पद्म को टेढ़ा खिलने न उपदेश कर सकते हैं न समर्थन। अगर करेंगे तो उनकी अल्पज्ञता या कठहुज्जती होगी।"

"गुहा के बाहर विराट् संसार को मैं गुहा से ज्यादा सत्य मानता हूँ' यह उक्ति ऐकदेशिक, एक ही विषय पर जोर देनेवाली होने के कारण 'शतदल–विकास' वाली उक्ति की सार्वभौम मर्यादा नहीं रखती, यह रवीन्द्रनाथ के प्रति–पादन की दुर्बलता है। फिर, गुहा संसार से अलग नहीं, न संन्यास एक कर्म–साधना से पृथक्। अपरचं, 'गुहा के बाहर विराट् संसार' यह शब्द–बन्ध मरीचिका, असत्य, प्रमाद और अज्ञान है। क्योंकि गुहा को देखकर ही बाहर के विराट् की कल्पना होती है, अर्थात् यदि छोटा न रहे तो बड़े की कल्पना न हो,

पृथ्वी के सब परमाणु अलग कर देने पर विराट्-पिण्ड का अस्तित्व जाता रहता है, साथ-साथ छोटे-बड़े का भ्रम भी दूर हो जाता है और कौन छोटी गुहा है और कौन बड़ा संसार, इसके बतलाने में दिक्कत पैदा हो जाती है। एक साम्य-सूत्र के भीतर छोटे-बड़े की व्याख्या में रवीन्द्रनाथ की विचार-दुर्बलता अनेक जगह पकड़ी गयी है। छोटे के बाद बड़े का लोभ दिखाने के वक्त छोटे ही रवीन्द्रनाथ के साथ होंगे, जब छोटे को छोड़कर बड़े को पकड़ने के लिए उनके साथ-साथ दौड़ेंगे और यही विचारों की मरीचिका है"[1]

'मतवाला' पारसी नाटकों की खबर लिया करता था। लेकिन 'रँगीला' के सम्पादन के समय तक सिनेमा का प्रचार खूब हो गया था। 'रँगीला' में पहले अंक से ही 'छाया-चित्र' का एक स्तम्भ रखा गया। सिनेमा-सम्बन्धी निराला के विचारों की झाँकी तो इस स्तम्भ के निम्नांकित पंक्तियों से मिल जाती है। यह पत्र सिनेमा-सम्बन्धी किस नीति को लेकर चला था, इस का स्पष्टीकरण भी उसकी अधोलिखित टिप्पणी से हो जाता है :

"सिनेमा की तरफ़ लोग बेपेंदी के लोटे की तरह लुढ़कते हैं। ऐसा खुश होते हैं जैसे ससुराल जा रहे हों। वही ठाट-बाट, वही नाज़ व अदा। मिस सुलोचना, मिस सीता गौहर और मिस जुबेदा वगैरह आँखों की रोशनी और दिमाग़ की ताकत बढ़ाने के लिए जैसे ब्रिस्टाल-सालसा हों। अठन्नी रोज़ कमाने वाले साधारण लोग भी चवन्नी चरितावली में हफ्ते में चार रोज ज़रूर ससुराल में किसी बीबी का मुँह देखेंगे। अब तक आँख के अन्धों ही को 'चाशनीये शरबते दीदार थोड़ी-सी' मिलती रही, अब कान के बहरों को भी टूटे हुए दिल के आईने की आवाज़ सुनाई देने लगी और प्यार नसीहत नहीं चाहता। वह मुसीबतों का पहाड़ उठायेगा, पर अपने ही दिल की राह होकर गुजरेगा, वह कटीली हो, पथरीली हो। दिल की सुई को देखकर ही हर शख्स अपने शरीर के जहाज को चलाता है। फिर जिस बंदरगाह में दिल की तस्वीर हो, वहाँ हम इसी ख्याल से नसीहत नहीं करते, और चर्राए हुए शौक को पूरा कर लेने के लिए कहेंगे। क्योंकि दिल की बीमारी और सब बीमारियों सें बढ़कर है बीमार दिल का इलाज है ही नहीं। योरप को धन्यवाद है, जिसने ऐसी बुरी तरह दिल पर कब्जा कर लिया और आर्ट की दोहाई देकर अपना मतलब भी गाँठ रहा है।"

१. निराला-अभिनंदन-ग्रंथ : बरुआ, पृ० १५७-१५८

"अब हमारे यहाँ भी देशी छाया–चित्र तैयार होने लगे हैं। इधर पूँजी–पतियों का काफी ध्यान आर्कषित हुआ है। पर अभी तक जितने मूक और बोलते हुए चित्र हमने देखे हैं, वे अधिकांश रद्दी हैं। लखनऊ में 'दिलेर दुख्तर' टाकी हमें पसन्द आयी थी। 'लैला–मजनू' और 'सत्य हरिश्चन्द्र' वगैरह कई टाकियाँ और देखीं। वे दुरुस्त नहीं आयीं। चित्रण में सबसे पहले तीसरे दर्जे के लोगों का ध्यान रहता है, क्योंकि सिनेमा के वही सबसे ज्यादा शौकीन होते हैं। इसलिए भारतीय फिल्मों का विदेशों में मज़ाक उड़ाया जाता है। पूँजीपति साहित्य की सृष्टि केवल साहित्य के विचार से कर नहीं सकते और न यहाँ का सामाजिक जीवन वहाँ की तरह विस्तार रखता है। पर कुछ फिल्म अच्छे साहित्यिकों की राय से तैयार होनी चाहिए, क्योंकि अच्छे होने पर विदेशों में भी उनकी खपत हो सकती है। यहाँ तो उनका आदर होगा ही।"[१]

निराला ने 'रँगीला' के चौथे अंक में एक सम्पादकीय टिप्पणी लिखी–'दीनी पुड़िया छत्तीस रोग'। इस तथ्य का प्रमाण श्री कालिकाप्रसाद श्री-वास्तव के द्वारा उद्धृत एक रोचक संस्मरण से मिलता है।

गर्ग जी कोयले की दुकान करते थे, 'रँगीला' के प्रकाशन में निरालाजी आर्थिक साहायता करते थे। अंक दो, तीन या चार ही निकले पर खूब निकले। एक अंक में निरालाजी ने एक सम्पादकीय टिप्पणी लिखी – 'दीनी पुड़िया, छत्तीस रोग'। हरिसन रोड तथा चितपुर नुक्कड़ पर (स्वर्गीय) मोतीलालजी, हिन्दुस्तान के भूतपूर्व सम्पादक, मिल गये और 'दीनी पुड़िया छत्तीस रोग' का मतलब पूछ बैठे। निरालाजी ने समझाने का प्रयत्न किया। पर वे तो निरालाजी को चिढ़ाने पर तुले हुए थे। निरालाजी ने गोस्वामी तुलसीदास की एक चौपाई पढ़ सुनाई और उसका अर्थ करने के लिए कहा। इस पर वे स्वयं चिढ़ गये। पर निरालाजी ने सहजभाव में उनको इस चौपाई का अर्थ बताने के लिए छः महीने का समय दिया। हम लोग सभी हँसते हुए आगे बढ़ गये। इस तरह की मनोरंजक घटनायें प्रायः रोज ही हुआ करती थीं।"[२]

'मजलिस' स्तम्भ में बहुतों पर फब्तियाँ कसी गयी हैं।

'मतवाला' के बाद 'रँगीला' अकेला बड़ी परेशानी में था। पहला अंक बाजार में ऊँचा कहा गया, दूसरा ठीक, पूरे कुल कालम भिन्न–भिन्न दूसरे ही

---

१. निराला-अभिनन्दन-ग्रंथ : बरुआ, पृ०१५८-१५९

२. निराला-अभिनन्दन-ग्रंथ : बरुआ, पृ०१५९

ही नामों से मैंने ही भरे। पहला तो स्पष्ट ही। तीसरे ने अस्वस्थ होकर गिरा दिया। चौथा सँभालने का विचार था, शिकस्त हो गया। ---अकेला था, सब विषय हर हफ्ते कहाँ तक पूरे करूँ ? छापे की ग़लतियाँ भी होती थीं, प्रेस अपना नहीं, प्रेस की मशीन अपनी नहीं, अपनी इच्छा की मैंने प्रतिकूलता की मित्रों के अनुकूल होने के लिए।

मैं अकेला !
देखता हूँ आ रही मेरे दिवस की सांध्य-बेला।
पके आधे बाल मेरे, हुए निष्प्रभ गाल मैरे।
चाल मेरी मंद होती जा रही, हट रहा मेला।
जानता हूँ नदी झरने जो मुझे थे पार करने;
कर चुका हूँ, हँस रहा हूँ, देख कोई नहीं मेला।[1]
— निराला

निराला ने 'रँगीला' में 'कृष्णजीवन का विवाह' लिखा। दूसरा लेख 'हुमा को कब चुगद पहचानता है' भी लिखा। निराला ने अपनी कहानी 'श्यामा' और 'परिचय' को भी प्रकाशित किया है। 'परिचय' कहानी के साथ लेखक का नाम दिया के० पी० श्रीवास्तव।

'रँगीला' चौथे अंक से बन्द हो गया। उसके बन्द होने की कहानी निराला की चारित्रिक महानता का आदर्श उपस्थित करती है और साथ ही यह भी बताती है कि हिन्दी-पत्रकारिता का आदर्श इस महाकवि ने किस तरह निरूपित किया था।

"'रँगीला' के एक स्वत्वाधिकारी ने किसी सेठ की घरेलू कहानी की ऐसी विडम्बना का पता लगाय था जिससे वह उस सेठ की इज्जत पर आघात पहुँचा सकता था। उसने निराला की गैर मौजूदगी में वह कहानी जरा उत्तेजक ढंग से लिखकर कम्पोज करवाई और उसका प्रूफ उस सेठ के पास इस धमकी के साथ भिजवा दिया कि अगर आप इतना रुपया दें तो हम यह नहीं छापेंगे। वह सेठ साहस कर निरालाजी की सहृदयता में विश्वास रख कार्यालय में आया और प्रधान सम्पादक से मिला। निराला ने पूरी बात सुनने के पहले ही क्रोध में भरकर वह कम्पोज की हुई गैली उठा कर फेंक दी और उस सेठ को अभय

१. निराला की आत्मकथा : डा० सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृ० ६८–६९

वरदान देकर विदा किया। जब वे स्वत्वाधिकारी महोदय कार्यालय में आये तो प्रधान सम्पादक उन पर खूब बिगड़े और सारा हिसाब-किताब फाड़कर फेंक दिया। न सिर्फ यही किया, बल्कि वहाँ से काम छोड़ कर चले आये।"[1] इस तरह निराला जी ने ऐसा कर अपनी सम्पादन-सचाई का एक अद्भुत प्रमाण प्रस्तुत किया।

निराला के अन्य सम्पादित पत्रों में 'मौजी'[2] एवं 'कला'[3] तथा 'सरोज'[4] के उल्लेख किए गए हैं, इन पत्रों का विस्तृत विवरण प्राप्य नहीं है।

---

१. निराला-अभिनंदन-ग्रंथ : बरुआ, पृ० १६०

२. 'मौजी' का नाभोल्लेख प्रामाणिक तथ्यों के अभाव में संदिग्ध सा है।

३. 'कला' (सम्पादक-कमलाशंकर सिंह) को यत्र-तत्र निराला सम्पादित कहा गया है।

४. प्राप्त तथ्यों के अनुसार यह भूतनाथ तेल वालों का प्रस्तावित पत्र था। इसका मोटो था :

'काव्यमोदी मधुपमय सरस तरंगित ओज'
साहित्यामृत भरित यह सुरभि सुरुचि सरोज।'

इसे निराला रचित कहा गया है। विशेष विवरण अप्राप्य है।

पत्रकार निराला की विशिष्ट उपलब्धियाँ

निराला का अधिकांश साहित्य पत्रकारिता के माध्यम से सामने आया है। पत्रकारिता द्वारा निरालाजी ने साहित्य की अनेक विधाओं का प्रणयन किया है। साहित्यिक पत्रों में प्रकाशित कहानी, उपन्यास, निबन्ध आदि विधाओं के माध्यम से निराला ने सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा साहित्य-सम्बन्धी विचारों में नवीन तथ्यों का समावेश किया है। निराला की पत्रकारिता का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रदेय है -एक विशिष्ट गद्य का निर्माण।

"पद्य की तरह गद्य में निराला ने अनेक शैलियों का निर्माण किया। पद्य में जैसे उन्होंने अनेक काव्य-रूप रचे वैसे ही गद्य में। जैसे पद्य में बहुत जगह उनका शब्द-चयन तत्समबहुल है वैसे ही गद्य में। जैसे पद्य में सरल शब्दावली रहते भी दुरूहता उत्पन्न होती है, वैसे ही गद्य में।"[1] निराला के गद्य की गति कहीं-कहीं पद्य से भिन्न भी है। बहुत धीमी गति है वहाँ जहाँ प्रभावती दुर्ग से उतरती है या लाहौर नगरी अंधकार केश खोले हुए जगमगाती रहती है। ऐसी ही धीमी गति है, उनके दार्शनिक गद्य की, भले ही उसमें अलंकरण न हो, भाषा में भी शुद्धता का विशेष ध्यान न रखा गया हो, जैसे 'शून्य और शक्ति' में— "शून्य या बिन्दु सब शास्त्रों में सब तरफ, सब समय, स्वयंसिद्ध है। उद्भव स्थिति और प्रलय का शून्य ही मूल रहस्य है। केवल शक्ति संसार को शून्य से अलग किये हुए है, दूसरे तरीके के शून्य की ही व्याख्या करने में सदैव तत्पर।"[2] वाक्य छोटे-छोटे हैं 'तरफ' और 'तरीका' शुद्धता भंग कर देते हैं। गति मद्धिम है। अलंकारों का अभाव है। इसके विपरीत जब निराला जी बहस के दौरान थोड़ा उत्तेजित होते हैं, तब वाक्य छोटे हों, चाहे बड़े गद्य की गति तेज हो जाती है। राजनीतिक, साहित्यिक विषयों पर बोलचाल की हिन्दी में उन्होंने सशक्य

---

१. निराला की साहित्य-साधना : डॉ रामविलास शर्मा, पृ० ४९६

२. प्रबन्ध-पद्म : निराला, पृ० १

गद्य बहुत बड़े परिमाण में लिखा है। ये रचनाएँ अधिकांशतः पत्र-पत्रिकाओं हेतु विरचित हैं। निराला पद्य की तरह गद्य में खयाल की गिरह लगाते रहे हैं जिसे खोलने में पाठक को काफी परिश्रम करना पड़ता है। निबन्ध का शीर्षक है-'एक बात'।[१] शीर्षक में बड़ी सादगी है। पाठक सोचता है, निबंध की भाषा सरल होगी, किन्तु निबंध शुरू होता है इस तरह - "हिन्दी की हितैषणा की गाँठ में गठिए का असर उसके सेवकों के तर दिमाग के कारण बढ़ता ही जा रहा है।"[२]

निराला का गद्य एक ओर वाद-विवाद में जूझनेवाले कुशल तार्किक और व्यंग्य लेखक का गद्य है दूसरी ओर उसमें चित्रमयता, भाव-गाम्भीर्य और कविता के भी दर्शन होते हैं, जैसे,"आत्मसमुद्र में जब पाप और पुण्य दोनों मिले हुए हैं, तब उस विष की परिव्यक्त सघन नीलिमा भी राम की श्याम शोभा बनती है।"[३] 'भक्त और भगवान्' के प्रारम्भिक वाक्यों में बड़ा रंगीन गद्य है, कोमल भाव जगाने वाला व्यंग्य है, किन्तु कटु नहीं करुणामिश्रित। रूपक है लेकिन दूर की कौड़ी लाकर उसे दुरूह नहीं बनाया गया। यह भी कवि का गद्य है :

"भक्त साधारण पिता का पुत्र था (पिता साधारण थे, पुत्र असाधारण यह ध्वनि)। सारा सांसारिक ताप पिता के पेड़ पर था, उस पर छाँह (पिता ने साधारण होते हुए भी बेटे को जीवन में किसी अभाव से दुःखी न होने दिया)। इसी तरह दिन पार हो रहे थे। उसी छाँह के छिद्रों से रश्मियों के रंग, हवा से फूलों की रेणुमिश्रित गंध, जगह-जगह ज्योतिर्मय जल में नहाई भिन्न-भिन्न रूपों की प्रकृति को देखता रहता था।(सविकल्प समाधि में योगी को अथवा कल्पना में प्रतिभाशाली कवि को जो भव्य दृश्य दिखाई देते हैं, वे भक्त को भी दिखायी देते थे (इसके बाद व्यंग्य)। स्वभावतः जगत के करण कारण भगवान् पर उसकी भावना बंध गयी।"[४] इस तरह निरालाजी एक वाक्य से दूसरे वाक्य तक अर्थ-प्रसार करते हैं। पूरे पैराग्राफ में गहरे अर्थ की ध्वनि गूँजती है।

---

१. निराला की साहित्य-साधना, भाग २ : डॉ० रामविलास शर्मा, पृ० ४९७
२. प्रबन्ध-पद्म : निराला, पृ० ४५
३. 'सुधा', १ अक्टूबर ३३, सम्पा० टि०—१
४. 'भक्त और भगवान्-निराला

पत्रकारिता-जगत् में निरालाजी ने गद्य–लेखन के अन्तर्गत तरह-तरह के प्रयोग किये हैं। इनमें एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है – 'वर्तमान धर्म'। इसमें उन्होंने विचारों को जोड़नेवाली कड़ियाँ बहुत जगह तोड़ दी हैं। वे आकस्मिक ढंग से एक विचार से दूसरे तक पहुँचते हैं। गंभीर दार्शनिक बिवेचन के साथ उनमें रहस्यतत्त्व भी मिलता है। हास्य में इसी स्तर पर वे शब्दों की ध्वनि से खेलते हुए एक शब्द के सहारे दूसरे शब्द-दूसरे विचार तक पहूँच जाते हैं। हास्य और प्रखर दार्शनिक तर्कों का ऐसा मेल हिन्दी के दूसरे निबन्ध में नहीं मिलता। इस मेल में एक आन्तरिक संगति है। निरालाजी ऐसे दार्शनिक पक्ष का समर्थन करते हैं जो रूपकों के बाह्य अर्थ को स्वीकार नहीं करता। इस ताने-बाने में वे साहित्यिक वाद-विवाद के सूत्र को पिरो देते हैं।

'वर्तमान धर्म' का गद्य छायावादी अलंकृत गद्य के विरोध में लिखा गया है। यह निराला जी के मन की तीव्र प्रतिक्रिया भी व्यक्त करता है। 'वर्तमान धर्म' में निराला शब्दों की ध्वनियों से खेलते हैं। इसलिए लगता है वह उनके गद्य-साहित्य एक अपवाद है। परन्तु वास्तव में वह ऐसा है नहीं। गद्य और पद्य में निराला की ऐसी रचनाएँ हैं जिनमें स्वगत कथन–शैली में वे स्वयं से बात करते हुए दूसरे को अपना 'राज' नहीं देते। निरालाजी के गद्य में उर्दू-शब्दों का प्रयोग खूब हुआ है।

निराला के अनुसार लिखित भाषा में तब शक्ति आती है जब उसमें बोल-चाल की प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग हो। निरालाजी को हिन्दी पद्य की तरह लिखित गद्य से भी सन्तोष न था। उन्हें गद्य अस्वाभाविक और शक्तिहीन लगता था – "क्या मजाल कि किसी विद्वान् का लिखा एक वाक्य सीधे जबान से निकल जाए।" 'उन्होंने उस गद्य को श्रेष्ठ माना जिसमें जल्द से जल्द अधिक से अधिक भाव लिखे और बोले जा सकें।' निरालाजी के गद्य की गति द्रुत नहीं, अर्थ-वक्रता गूढ़, व्यंग्य–अलंकरण–सौन्दर्य के कारण वाक्य धीरे-धीरे आगे बढ़ते हैं, उन्हें जल्दी-जल्दी पढ़ना उनके साथ अन्याय करना है। लेकिन सर्वत्र निराला का यह प्रयत्न रहा है कि लिखें थोड़ा और लोग समझें बहुत। कविता में जहाँ-तहाँ तुकबन्दी के लिए या भाषा को सरस बनाने के लिए जैसे वे बहुत से फालतू शब्दों का व्यवहार पद्य में करते हैं, वैसे गद्य में नहीं। भाषा को बोलचाल का सहज रूप देने के लिए वे वाक्य-रचना का ढंग बदल देते हैं। शब्दांश या शब्दखंड रचे हुए गद्य की तरह नहीं, बोले हुए गद्य की तरह प्रतीत होते हैं। 'सुधा' की

बहुत सी टिप्पणियों का गद्य ऐसा है जिसमें ललकार है, चुनौती है, दूसरे को उभारने की शक्ति है, यह उनकी बातचीत की विशेषता थी।

निराला के पत्रकारिता-गद्य में उतने ही अलंकार हैं जितने बोलचाल की भाषा में पाये जाते हैं। स्वर का क्रमशः चढ़ते जाना, फिर अचानक उतार और स्तंभित सा होकर विराम लेना, यह निराला के उस गद्य की विशेषता है जिसमें वे आवेश में बोलते हुए कला की बात भूल जाते थे। यहाँ उनके व्यक्तित्व को उनकी शैली से अलग करना असंभव है। यही कला की सिद्धि भी है। गद्य को रचनात्मक रूप प्रदान कर निरालाजी ने गद्य साहित्य में भी एक क्रांति का उद्-घोष किया है। इस रचनात्मक गद्य के द्वारा उनके पत्रकार जीवन में एक नयी चेतना का प्रादुर्भाव हुआ है।

निरालाजी ने पत्रकारिता के माध्यम से एक वैचारिक क्रान्ति का मंत्र फूंका है। उनकी क्रान्ति-सम्बन्धी समस्त कवितायें या लेख उनके पत्रों में छपे हैं। इसलिए उन कविताओं तथा लेखों के माध्यम से उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक, साहित्यिक क्षेत्र में वैचारिक क्रान्ति की भावना जगायी है। निराला क्रान्ति के कवि हैं। उस क्रान्ति के जिसका लक्ष्य भारत को विदेशी पराधीनता से मुक्त कराना ही नहीं, जनता के सामाजिक जीवन में परिवर्तन करना भी था। क्रान्तिकारी परिवर्तन की उनकी आकांक्षा २९ दिसम्बर, सन् १९२३ के 'मतवाला' में प्रकाशित उनकी कविता 'धारा' से लेकर 'सांध्यकाकली' में प्रकाशित अन्तिम दौर की शिवताण्डव वाली कविता तक अनेक रूपों में, भाव-बोध के अनेक स्तरों पर व्यक्त हुई है।

कहीं धारा, कहीं बादल, कहीं शिव और काली, कहीं पुराने पत्तों का झड़ना और नये पत्तों का आना जैसी रचनाओं में निराला ने क्रांति के अनेक प्रतीकों का प्रयोग किया है। उनकी क्रान्ति का जो रूप सबसे पहले हमारे सामने आता है, वह विनाशात्मक है। किन्तु इस विनाश से पहले शताब्दियों की घुटन, लाखों मनुष्यों का दारुण हाहाकार, जो क्रान्ति से ही शान्त होता है, वह क्रान्ति को अनिवार्य बनाता है। क्रान्ति वे करते हैं जो दुःखी हैं, दूसरों के दुःख को पहचानते हैं। क्रान्ति की मूल प्रेरणा मानव-करुणा है। क्रांति का विनाशात्मक उद्देश्य तात्कालिक और अस्थायी होता है। उसका मूल उद्देश्य रचनात्मक और स्थायी है। 'धारा' कविता में निराला ने कहा है :

आज हो गये ढीले सारे बन्धन
मुक्त हो गए प्राण
रुका है सारा करुणा-क्रंदन ।

करुण-क्रंदन को रोकना, बन्धनों को ढीला करना सामाजिक क्रांति का उद्देश्य है। उस क्रान्ति का आह्वान करता हुआ कवि कहता है अब श्यामा का नृत्य होगा, असुरों की मुंडमालाओं से वह सज्जित होगी, झंझा उसकी भेरी होगी, वीणा के तार टूट जायेंगे, कोमल छंद बंद होंगे, किन्तु उसके साथ निर्जन वन के वृक्ष अपने कर-पल्लवों से ताल देंगे। विनाश के साथ निर्माण क्रांति से दोनों कार्य सम्पन्न होंगे।[1]

'मतवाला' में 'बादल राग' कविता छपी। बादल की वज्र-हुंकार सुनकर संसार काँप उठता है, वज्रपात से बड़े-बड़े पर्वत क्षत-विक्षत हो जाते हैं; समाज के धनी जन आतंक-अंक में अपनी अंगनाओं से लिपटे रहने पर भी काँप उठते हैं, किन्तु बादल का गर्जन सुनकर पृथ्वी के हृदय से सोते हुए अंकुर फूट पड़ते हैं, नये जीवन की आशा से वे आकाश की ओर देखते हैं; छोटे पौधे वर्षा-जल पाकर लहलहा उठते हैं, वे बादल को संकेत से बुलाते हैं, बादल का जल अट्टालिका पर नहीं ठहरता, वह कीचड़ में पहुँचकर कमल खिलाता है। 'परिमल' की 'बादल राग' कविता में क्रांति के दोनों पक्षों का चित्रण किया गया है।

निराला की वैचारिक क्रान्ति का स्रोत उनकी गंभीर मानवीय करुणा है। जो दलित और उपेक्षित हैं वे निराला के स्नेहभाजन हैं। दीन जनों के लिए निराला ने अनेक प्रतीकों का निर्माण किया। रजकण सदियों से दूसरों के पद-प्रहार सहता आया है, लोग उसे नीच कहते हैं, वह अपना अपमान चुपचाप सह लेता है।[2] दूसरा प्रतीक है प्रपात। पर्वत से बहता, पत्थरों से टकराता, अंधकार में भटकता है, फिर भी शान्त मन से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ जाता है।[3] प्रतीक-योजना को छोड़कर निराला दीन जनों का सीधा वर्णन करते हैं।

निराला के चिन्तन से क्रांतिकारी और वीरों का गहरा संबंध है। दोनों एक-दूसरे को परखते हैं, एक दूसरे की बात समझते हैं। विप्लवी वीर आतंक-

१. 'आवाहन', 'परिमल' : निराला, पृ० १२७
२. 'परिमल' : निराला, पृ० १४५
३. 'परिमल' पृ० १४२

वादी नहीं, किसानों का पक्ष लेकर लड़नेवाला क्रांतिकारी है। फिर भी उसके और किसान के बीच का थोड़ा फासला प्रायः खत्म हो जाता है।

क्राँति करना क्राँतिकारियों का ही काम नहीं है। क्राँति जनता करती है तभी वह सफल होती है। यद्यपि निराला की प्रतीक-योजना में विशेष अन्तर नहीं आया तथापि यह उल्लेखनीय है कि उनकी क्राँति-सम्बन्धी चेतना में परिवर्तन हुआ है। उनकी कविताओं में जनता की क्राँति-विषयक भूमिका और स्पष्ट हुई है तथा क्राँति का उद्देश्य और अधिक प्रकट हुआ है। यह पुराने ढंग की सामंत-विरोधी क्राँति नहीं, जैसी फ्रान्स में हुई थी और न यह अँगरेजों को हटानेवाली पूँजीवाद के विकास की क्राँति है। भारत के ऐतिहासिक विकास के पूर्णतः अनुकूल यह समाजवाद की ओर उन्मुख सामन्त-विरोधी क्राँति है। समाज-वादोन्मुख इस क्राँति-व्यवस्था से एक ओर जमींदारी-जागीरदारी का खात्मा होता है और दूसरी ओर पूँजीपतियों के अधिकार भी, आंशिक रूप में ही सही, नियंत्रित होते हैं।

निराला अन्य वेदान्ती क्राँतिकारियों की अपेक्षा भौतिक समृद्धि को वांछनीय समझते हैं। व्यापार, औद्योगीकरण तथा अन्य देशों से आर्थिक संबंध को वे सफल क्राँति का साधन मानते हैं :

जागो, जीवन धनिके
विश्व-पण्य वणिके (गीतिका)[१]

लोग कहते हैं सरस्वती और लक्ष्मी में बैर होता है किन्तु निराला इस बैर-भाव की धारणा को स्वीकार नहीं करते। सच्चा ज्ञान जनता की भौतिक उन्नति का विरोधी नहीं, उसके लिए नया मार्ग दिखानेवाला है। जिसे वे 'वणिके' और 'धनिके' कहकर संबोधित करते हैं, उसी को भारती, ज्ञान की देवी भी मानते हैं :

भारति, भारत को फिर दो वर
ज्ञान-विपणि-खनिके ।

जो लक्ष्मी है, वही सरस्वती है, जो ज्ञान है, वह भौतिक समृद्धि के लिए भी है। 'भक्त और भगवान्' कहानी से इस प्रतीक-योजना की पुष्टि होती है। भक्त की पत्नी का सरस्वती था। स्वप्न में वह पति से कहती है – "मेरा नाम सरस्वती है,

१. 'परिमल' निराला, पृ० ११५

पर मैं सजकर जैसे लक्ष्मी बन गयी हूँ।"[१] 'राम की शक्तिपूजा' में शक्ति की जो मौलिक कल्पान की गयी हैं, उसमें भी 'लक्ष्मी' और 'सरस्वती' दोनों साथ-साथ हैं।

निराला की क्रांति-सम्बन्धी कवितायें औसत प्रगतिवादी रचनाओं से भिन्न हैं। प्रगतिवादी कवियों ने पूंजीवाद के खिलाफ तो बहुत लिखा, लेकिन साम्राज्य वाद और उसके मुख्य सहायक सामन्तवाद के बारे में वे सामान्यतः चुप रहे। निराला-साहित्य में भारतीय क्रांति का सामन्त-विरोधी स्वर जैसा उभर कर आया वैसा प्रेमचन्द के अलावा किसी अन्य हिन्दी-लेखक की रचना में नहीं। निराला का स्वर युग की वैचारिक क्रांति के मध्य पर्याप्त मुखर है। वे परिवेश को देखते हैं और भविष्य को भी। निराला ने पत्रिकाओं के माध्यम से समाज में एक वैचारिक क्रांति की धारणा को सुदृढ़ किया है। विविध पत्रों में प्रकाशित निराला की कवितायें और लेखों में जिन वैचारिक क्रांतिकारी तत्त्वों का समावेश हुआ है, वे हैं - सामाजिक चेतना, यथार्थबोध, राष्ट्रीय भावना, संस्कृति, दर्शन, ह्रास-परिहास, आँचलिक तत्त्व, प्रणय तथा सौंदर्य-चेतना।

निरालाजी ने इन पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्य की कई नवीन विधाओं का प्रवर्तन किया। उन्होंने सदैव अपने स्वतंत्र विचार को महत्त्व दिया है। इसी कारण उन्होंने साहित्य-सम्बन्धी विधाओं में अनेक नवीन तत्त्वों का समावेश किया। वे काव्य में मुक्त छन्द के पुरस्कर्ता माने जाते हैं। इसके साथ ही वे भाषा तथा गद्य की अनेक विधाओं जैसे, नाटक, अनुवाद आदि पर अपना नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं आलोचना पर उन्होंने जमकर लिखा है। इन्हीं विधाओं के बारे में उनकी मान्यताएँ विचारणीय हैं।

निराला काव्य की एक नवीन विधा 'मुक्त छन्द' के प्रवर्तक माने जाते हैं। उन्हें छन्द के रूढ़िगत बन्धन स्वीकार्य नहीं थे। इसीलिए उन्होंने छन्द के क्षेत्र में एक क्रांति की है। 'मुक्त छन्द' कविता के लिए कितना अनिवार्य है, इसका विश्लेषण करते हुए उन्होंने 'परिमल' की भूमिका में लिखा है - "मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के बंधन से अलग हो जाना।" 'मेरे गीत और कला' में भाव, भाषा, छन्द-तीनों की मुक्ति का समर्थन करते हुए उन्होंने अपनी दार्शनिक मान्यता दोहरायी है "भावों

१. 'चतुरी चमार' : निराला, पृ० ७६

की मुक्ति छन्द की भी मुक्ति चाहती है। यहाँ भाषा, भाव और छन्द तीनों स्वतंत्र हैं।"[१]

छायावादी कवि के लिए आदर्श भाषा वह है जो अलंकारहीन हो। उसके लिए आदर्श छन्द वह है जो बन्धनमुक्त हो। 'छन्द' का अर्थ ही भाषा को गति-लय-बन्धनों-से नियंत्रित करना है। इसलिए कैसा भो आदर्श छन्द क्यों न हो, वह बन्धन-मुक्त तो हो ही नहीं सकता। 'मुक्त छन्द' 'मुक्त' और 'छन्द' आपस में विरोधी अर्थों के द्योतक हैं। 'मुक्त छन्द' पूर्णतः मुक्त नहीं है। उसका भी अपना एक आधार है। निरालाजी ने 'पंत जी और पल्लव' नामक निबन्ध में पर्याप्त विस्तार से समझाया है कि 'मुक्त छन्द' कवित्त के आधार पर ही सफल हो सकता है तथा यह हिन्दी की जातीय छन्द है।

हिन्दी-गद्य-साहित्य की एक प्रमुख विधा नाटक का सम्यक् विवेचन निरालाजी ने अपने सम्पादित पत्रों में किया है तथा उसके विषय में अपने नवीन विचारों को प्रकट किया है। प्राप्त प्रमाणों के अनुसार निरालाजी ने कुछ नाटकों की रचना की थी जो अभी तक हिन्दी-संसार के समक्ष नहीं आए हैं। लेकिन कहीं-कहीं उनका उल्लेख भर मिलता है। कुछ सूत्रों के अनुसार उनकी नाट्य कृतियों का विवरण इस प्रकार है :

१. समाज, २. शकुन्तला, ३. उषा का अनिरुद्ध (सभी प्रकाशित)। 'नाटक की समस्या' शीर्षक अपने निबन्ध में वे स्पष्ट लिखते हैं – "अनेकानेक कारणों से हिन्दी में मुझे दूसरी ओर से होकर चलना पड़ा था। नाटक साहित्य को लेकर नहीं उतर सका। इधर कुछ दिनों से निश्चय कर रहा हूँ। नाटकीय सफलता मुझे कहाँ तक होती हैं, मेरे उतरने के बाद लोग स्वयं आलोचना करेंगे।"[२]

निरालाजी ने इसी प्रकार साहित्य की एक और विधा 'अनुवाद' के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं। निरालाजी एक सफल अनुवादक थे। अनुवाद की दृष्टि से उनकी कृतियाँ महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने अनुवाद के साथ-साथ अनुवाद-कला और उसकी समकालीन स्थिति पर भी विचार व्यक्त किए हैं। उनके मतानुसार "अनुवाद सत्य वही समझता है, मौलिक ग्रन्थ का चमत्कार उसी की दृष्टि में अपनी शोभनीय सृष्टि रखता है-अनुवाद और मूल दोनों की भाषाओं पर

---

१. 'निराला की साहित्य-साधना', भाग -२, पृ० ५२५

२. चाबुक, पृ० ९३-९५, ('मतवाला' १९२३-२४) : निराला

जिसका पूर्ण अधिकार हो। जिन लोगों को अनुवाद करने का रोग है, वे अनुवाद करके जीविकोपार्जन भले ही करते रहें, परन्तु सिर पर साहित्य-सेवा और हिन्दी के प्रभूत उपकार की पगड़ी लपेटकर उन्हें सातवें आसमान पर चढ़ाने की उदारता न दिखावें। सच्चा अनुवाद करने के लिए कितने बड़े ज्ञान की आवश्यकता है, यह वही समझते हैं, जो भाषा-विज्ञान के अधिकारी कहलाते हैं।"[१] अन्यत्र मुहावरे तथा अर्थध्वनि की मीमांसा करते हुए वे लिखते हैं – "भाषाओं के मुहावरे जाने बिना, अनुवाद जाने बिना अनुवाद में सफलता नहीं होगी।-अनुवाद को सदैव मूल के अर्थ पर ध्यान रखना चाहिए। यदि मूल में कोई चमत्कार हो तो अनुवाद में भी चमत्कार दिखलाना चाहिए।"[२]

अनुवाद की दृष्टि से 'मतवाला' में प्रकाशित तथा 'चाबुक' में संगृहीत निबंध 'बहता हुआ फूल' (अनुवादक–पं० रूपनारायण पाण्डेय) तथा 'चरित्रहीन' (अनुवादक शरत बाबू का एक मित्र) का विवेचन ध्यान देने योग्य है। 'बहता हुआ फूल' में अनुवादक ने 'फुलकी' का अर्थ रोटी कर दिया था, जबकि उसका अभिप्राय है–'चिनगारी'। निरालाजी की इस संदर्भ में व्यंग्योक्ति है–'चिनगारी' की जगह रोटी सेंकना आप ही-जैसे स्वयंसिद्ध अनुवादक का कार्य है-- अच्छा है- सेंकिये रोटी।"[३]

इस प्रकार निरालाजी ने अनुवाद विधा के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं। निरालाजी की आलोचना के विषय में भी अपनी मान्यता है। वे कहते हैं-"आलोचना साहित्य का मस्तिष्क है। अतः साहित्य के विकास का श्रेय अनेक अंशों में उसे ही प्राप्त है।"[४] इसके साथ ही साथ उन्होंने आलोचक के गुणों की भी व्याख्या की है -"काव्य की बारीकियाँ समझाने के लिए आलोचक को कवि से अधिक समर्थ होना चाहिए।"[५] इस तरह पत्रकारिता के माध्यम से निरालाजी ने साहित्य की विधाओं का नियमन किया है।

निराला के समकालीन साहित्य-जगत् में पत्रों का सम्पादन तो बहुत होता था, लेकिन साहित्यिक दृष्टि से बहुत कम पत्रों को विशेष महत्त्व प्राप्त था। साहित्यिक पत्रों में निरालाजी के आगमन के पूर्व जिनका नाम लिया जाता है, वे हैं 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका,' 'कविवचन सुधा,' 'सरस्वती,' 'माधुरी,' 'विशाल

---

१. चाबुक, पृ० ९३–९५
२. वही, पृ० १०२
३. वही, पृ० ९८
४. 'सुधा' जुलाई ३३, संपा० टि०–१
५. 'सुधा' अगस्त ३२, संपा० टि०–१

भारत' आदि । निरालाजी ने 'मतवाला,' 'सुधा'-जैसे पत्रों का सम्पादन-भार लेकर शुद्ध साहित्यिक पत्रकारिता का प्रारम्भ किया । 'समन्वय' ,'मतवाला' तथा 'सुधा' में प्रकाशित निरालाजी के समस्त लेख तथा काव्य प्रमुखतः एक साहित्यकार की दृष्टि को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं । इन पत्रों में निरालाजी का प्रमुख हाथ है । ऐसी स्थिति में उनका साहित्यिक रूप उन पत्रों में अभिव्यक्त हुआ है । वस्तुतः पत्रकारिता के क्षेत्र में साहित्यिकता की स्थापना करने का बहुत बड़ा श्रेय निरालाजी को ही है । निस्संदेह निरालाजी ने शुद्ध साहित्यिक पत्रकारिता के विकास का उपक्रम करके उसे महनीय बनाया है ।

समापन

साहित्यकार निराला और पत्रकार निराला का सहसंबंध

निरालाजी साहित्यकार के साथ ही एक उच्च कोटि के पत्रकार भी थे । एक आदर्श पत्रकार में जितने गुणों का समावेश होना चाहिए वे सारे गुण निराला में पाये जाते हैं । वे पत्रों का सम्पादन करते समय उसके प्रूफ-संशोधन, टिप्पणी-लेखन, हास्य-व्यंग्य-चित्रण आदि सभी स्तम्भों के अनुबन्धों का सम्यक् परिपालन करते थे । पत्रकार को अपने पत्र का सम्पादन करते समय पाठक की अभिरुचि का ध्यान रखना पड़ता है । इन सभी बातों का सम्यक् समावेश निरालाजी के पत्रकार-व्यक्तित्व में मिलता है । पत्रकार के साथ साहित्यकार होना 'सोने में सुगंध' वाली स्थिति है । निरालाजी ने साहित्य की प्रत्येक विध, जैसे, काव्य, कहानी, नाटक, उपन्यास, रेखा-चित्र, निबन्ध, संस्मरण, समीक्षा आदि क्षेत्रों में अपना सामर्थ्य सिद्ध कर दिखाया है । उनके अभिमत उनके द्वारा सम्पादित पत्रों में देखने को मिल जाते हैं । निश्चय ही निरालाजी को एक सफल पत्रकार साहित्यकार के रूप में युग-विधाओं तथा विचारधाराओं की स्थापना करने का श्रेय है । उनका अधिकांश काव्य तथा गद्य इन्हीं पत्रों में प्रकाशित है । निरालाजी द्वारा सम्पादित पत्रों का अध्ययन करने से यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि उनमें एक सफल साहित्यकार तथा पत्रकार-व्यक्तित्व का मणिकांचन संयोग है ।

१

आधारभूत सहायक ग्रंथ

(क) निराला-द्वारा रचित (आधारभूत) साहित्य :

१. अपरा
२. अप्सरा
३. अलका
४. कुल्लीभाट
५. चतुरीचमार
६. चाबुक
७. चयन
८. निरुपमा
९. देवी
१०. प्रबन्ध-प्रतिभा
११. प्रबंध-पद्म
१२. प्रभावती
१३. भारत में विवेकानन्द
१४. रवीन्द्र-कविता-कानन
१५. संग्रह
१६. सुकुल की बीवी
१७. श्रीरामकृष्ण-वचनामृत (चार भाग)

(ख) संदर्भ-साहित्य :

१८. आधुनिक पत्रकार-कला — रामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर
१९. अलक्षित निराला — डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित
२०. क्राँतिकारी निराला — डॉ० बच्चन सिंह
२१. निराला — सम्पादक डॉ० इन्द्रनाथ मदान
२२. निराला — डॉ० रामविलास शर्मा
२३. निराला-अभिनंदन-ग्रंथ — ओंकार शरद
२४. निराला आत्महंता आस्था — दूधनाथ सिंह
२५. निराला का अभिव्यंजना-शिल्प — जनार्दन द्विवेदी
१६. निराला कवि और कथाकार — डॉ० सरजूप्रसाद मिश्र
२७. निराला का गद्य — डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित
२८. निराला का गद्य-साहित्य — डॉ० प्रेमशंकर भट्ट

२९. निराला-काव्य का अध्ययन — डॉ० भगीरथ मिश्र
३०. निराला की आत्मकथा — डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित
३१. निराला की साहित्य-साधना–भाग १,२,३ — डॉ० रामविलास शर्मा
३२. निराला : व्यक्तित्व एवं कृतित्व — धनंजय वर्मा
३३. निराला : व्यक्ति एवं कवि — रामअवध शास्त्री
३४. निराला-साहित्य और युग-दर्शन — शिवशेखर द्विवेदी
३५. पत्र और पत्रकार — कमलापति त्रिपाठी
३६. पत्रकार प्रेमचन्द और हंस — डॉ० रत्नाकर पाण्डेय
३७. महाकवि निराला — जानकीवल्लभ शास्त्री
३८. महाकवि निराला : संस्मरण–श्रद्धांजलियाँ — श्री बरुआ
३९ महाप्राण निराला — गंगाप्रसाद पाण्डेय
४०. समाचार-पत्रों का इतिहास — अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी
४१. हिन्दी-पत्रकारिता — डॉ० कृष्णबिहारी मिश्र
४२. हिन्दी-पत्रकारिता : विविध आयाम — डॉ० वेदप्रकाश वैदिक
४३. हिन्दी-पत्रकारिता का उद्‌भव और विकास — डॉ० रामरतन भटनागर
४४. वे दिन वे लोग — शिवपूजनसहाय
४५. सम्पूर्ण पत्रकारिता — हेरम्ब मिश्र

(ग) उपजीव्य पत्र-पत्रिकाएं :

१. अभ्युदय
२. कर्मवीर
३. कला
४. धर्मयुग
५. प्रताप
६. प्रभा
७. भारत
८. मतवाला
९. मर्यादा
१०. माधुरी
११. रँगीला
१२. विशाल भारत
१३. वीणा
१४. समन्वय
१५. सरस्वती
१६. सरोज
१७. हंस
१८. साप्ताहिक हिन्दुस्तान

२

ग्रंथानुक्रमणी

अग्रवाल उपकारक, २३
अद्भुत शतक, २३
अनामिका, ८२
अपरा, ३६
अभय, ३०
अभ्युदय, २८
अल्मोड़ा अखबार, १८
अवतार, ६४
अवध अखबार, १८
अवन्तिका, ५३
आगरा अखबार, १८
आज, २९, ६२
आधुनिक पत्रकार-कला, १, ३
आनंद कादम्बिनी, २१
आर्य जगत्, ३०
आर्यदर्पण, १९
आर्यभूषण, १९
आर्यावर्त, २३
आरोग्यदर्पण, २१
आलोक, ३०
आशा, ३०
इदु, २२
इंस्टीच्यूट गजट, १९
इन्द्रप्रस्थ प्रकाश, २२
उचित वक्ता, २१
उदंत मार्तण्ड, १४, १५, १६, ३२
ऊजड़ ग्राम, १९
कर्पूरमंजरी, १९
कर्मवीर, २९, ८८
कलकत्ता के हिन्दी पत्रकार, ८२
कला, ३६, ४०
कल्पवृक्ष, ३०
कल्याण, ३१
कवि, २६
कविकुलकंजदिवाकर, २२
कवि चंद्रोदय, ३०
कविवचनसुधा, १७, १८, १३८
कादम्बरी, ३१
कान्यकुब्जहितकारी, २३
कायस्थ उपकारक, २३
कायस्थ उपदेश, २३
कायस्थ पत्रिका, २३
कायस्थसमाचार, २०
काव्यामृतवर्षिणी, २३
काशीपत्रिका, १९
काशीमंच, २०, २१

काशीवैभव, २५
काशीसमाचार, २२
किसान, ३१
केसरी, २८
क्षत्रियपत्रिका, २१
क्षत्रियमित्र, ८७
क्षत्रियहितैषी, २४
खत्री अधिकारी, २३
खत्रीहितकारी, २३
खिचरी समाचार, २२
गंगा, ३१
गोधर्मप्रकाश, २३
गोसेवक, २४
ग्वालियर गजट, १७
चतुरी चमार, १३५
चन्द्रिका, २६
चम्पारनहितकारी, २३
चाँद, ९०
चाबुक, ११५, १३६, १३७
जंगविलास, २२
जगत्समाचार, १८
जगदानंद पापमोचन, १८
जगद्दीपक भाष्कर, १७
जाट समाचार, २३
जामे जहनुमा, १५
जैन पत्रिका, २१
जैन भाष्कर, २६
जैन हितैषी, २४
ज्ञानदीप, १६
टाइम्स, ६२
तंत्र प्रभाकर, २६
द कल्चरल हेरिटेज ऑफ् इण्डिया भाग–२, ४९
दिनचर्या, २५
दिनकर प्रकाश, २२
दि फर्स्ट इण्डियन लैंग्वेज न्यूज पेपर इन हिन्दी एपियर्ड वाराणसी इन १९४५ वर्ल्ड मार्क इनसाइक्लोपीडिया ऑफ् नेशन्स् (एशिया एण्ड आस्ट्रेलिया), १६
दिल्ली, ५३
देवनागर, २९, ३१
देवनागरी प्रचारक, २१
देश, २९
देशहितैषी, २१
धर्मदिवाकर, २२
धर्मनीतितत्त्व, २१
धर्मपत्र, २०
धर्मप्रकाश, २०
धर्मप्रचारक, २३
धर्मसभा, २१
धर्मसभा अखबार, २३
धर्मसुधावर्षण, २३
धर्मोपदेश, २२
नयीधारा, ६८
नवयुग, ३१
नागपुर गजट, १८
नागरीनीरद, २४
नागरीपत्रिका, २०
नागरीप्रचारिणीपत्रिका, २५
नाट्य पत्र, २५
निगमागम चन्द्रिका, २६

निराला-अभिनंदन-ग्रंथ, ३६, ४३, ४४
४५, ४७, ४८, ५३, ५४, ५५, ६९,
१२५, १२६
निराला-एक भेंट, ५३
निराला की आत्मकथा, १२७
निराला की साहित्य-साधना, १२९, १३०
१३६,
नेशनल एण्ड पेन अमेरिकन प्रेस
काँग्रेस, २
न्यायपत्र, २५
पंत जी और पल्लव, १३६
परिमल, १३३, १३४
पत्र और पत्रकार, २, ३४
पीयूष प्रवाह, २३
पूर्णेन्दु, ३१
प्रजाहितैषी, १७
प्रताप, २६, २८
प्रतिभा, २९
प्रबन्धपद्म, ५५, ५६, ५७, १२९, १३०
प्रभा, २९
प्रयागदूत, १८
प्रयागधर्म, १८
प्रयागधर्मप्रकाश, १८
प्रयागसमाचार, २१
प्रवाह, ५८
प्रेम, ३१
प्रेमपत्रिका, २६
बंगदूत, १६
बनारस अखबार, १६
बिहारबंधु, १८
बुद्धिप्रकाश, १७
बेंकटेश्वर समाचार, २५
ब्रजवासी, २४
ब्रजविनोद, २३
ब्रह्मचारी, २९
ब्राह्मण, २२, ९३
ब्राह्मणहितकारी, २४
भारत, ३६
भारतचन्द्रोदय, २३
भारतजगिनी, २३
भारतजीवन, २३
भारतदीपिका, २१
भारतपंचामृत, २३
भारतप्रताप, २४
भारतबंधु, २९
भारतभ्राता, २३
भारतमित्र, २०
भारतहितैषी, २५
भारतहितैषिणी, २२
भारतीय पत्रकार-कला, १३
भारतेन्दु, २१
भारतोदय, २३, २८
मंगलसमाचार, १८
मजहरुल-सरूर, १७
मतवाला, ३०, ३५, ३६, ३९, ४०,
५४, ५५, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७,
६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४,
७५, ७६, ७७, ७८, ८०, ८१, ८२,
८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९,
९२, १२०, १२२, १२३, १२५,
१२६, १३२, १३३, १३८
महाप्राण निराला, ३४, ५०

महारथी, ३१
माधुरी, २९, ३०, ७०, ८८, ९०, ९१
मारवाड़ी सुधार, ४६
मार्तण्ड, १६
मालवा समाचार, २४
मित्र, २८
मित्रविलास, २०
मौजी, ३६, ४०
युयुत्सा, ३, ३७
युवक, ३१
रँगीला, ३६, ३९, ४०, १२०, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५, १२६, १२७
रत्नाकर, २५, २९
रसिकपंच, २३
रसिकमित्र, २६
रसिकवाटिका, २६
लंदन टाइम्स, १
लक्ष्मी, २८
वनलता, ३१
वर्तमान धर्म, ५९
वर्ल्ड मार्क इनसाइक्लोपीडिया ऑफ् नेशन्स्, ३
विक्टोरिया सेवक, २३
विद्यादर्श, १८
विद्याभास्कर, २३
विद्याविनोद, २५
विद्याविलास, २३
विद्योदय, २२
विवेकानंद चरित्र, ५३
विशालभारत, ३६, १३८
वृत्तान्त दर्पण, १८
वैष्णव पत्रिका, २२, २३
व्यापारबंधु, २२
व्यापारहितैषी, २४
शिक्षा, २६
शिवपूजन रचनावली, ६४, ६८
शिवाजी के पत्र, ५३
शुभचिंतक, २३
शून्य और शक्ति, ५६
श्रीमद्भगवतगीता, ५३
संग्रह, ५८
संस्कृति के चार अध्याय, ५१
सत्य, १९
सत्यप्रकाश, २२
सत्यवक्ता, २४
सत्य हरिश्चन्द्र, १९
सदाचार मार्तण्ड, २२
सनातनधर्मपताका, २६
सनातनधर्मोपदेशक, २३
सभापत्र, २३
समन्वय, ३०, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ५२, ५५, ५६, ५९, ६३, ९२
समयविनोद, १८
सम्मेलनपत्रिका, २९, ८७
समाचारचन्द्रिका, १५
समाचारदर्पण, १५
समाचारपत्रों का इतिहास, १६, २१, ६२
समालोचक, २६, २८
सरस्वती, २७, २८, २९, ३६, ४२, ४३, ७०, ९०, ९३, १३८
सरस्वती प्रकाश, २४

सर्वहितकारक, १७
सर्वहितैषी, २५
सरोज, ३६, ४०
सांध्यकाकली, १३२
सामदण्ड मार्तण्ड, १७
सारंग-सरोज, २५
सारसुधानिधि, २०
साहित्य समालोचक, २८
साहित्यसुधानिधि, २४
साहित्यिक पत्रिका, २८
सुख-संवाद, २३
सुदर्शन, २८
सुदर्शन समाचार, १९,
सुधा, ३६, ३७, ३९, ४०, ९०, ९१, ९२, ९३, ९७, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, १३०, १३७, १३८
सुधाकर, १७
सुधासागर, २४
सूर्य, २९
हरिश्चन्द्रकौमुदी, २५
हरिश्चन्द्रचन्द्रिका, १८, ९३, १३८
हरिश्चन्द्र मैगजीन, १८
हिन्दीप्रकाश, १८
हिन्दीप्रदीप, २०, ९३
हिन्दी बँगवासी, २४
हिन्दी मनोरंजन, २८
हिन्दी समाचार, २२
हिन्दी साहित्य का इतिहास, १७
हिन्दुस्तानी, २२
हिन्दुस्तान रिव्यू, २०
हिन्दूप्रकाश, १८
हिन्दू-बाँधव, १९
हिन्दू हेराल्ड, १६
हिन्दोस्तान, २२

३

ग्रंथकारानुक्रमणी

अमृतलाल चक्रवर्ती, २०, २२, २४, २५
अम्बिकाचरण घोष, २१
अम्बिकादत्त व्यास, २३
अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी, ३२, ६२
अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी, १६, २१
अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ८२, ८४, ८५, ८७, ९४, ९५
अवध उपाध्याय, ९५, ९६
अवधकिशोर वर्मा 'वाण', ९६
आर० एल० वर्मन, २४
आसूदापन्त टेकचन्द, ३१
इलाचन्द्र जोशी, २९, ३५, ९५
ईश्वरीप्रसाद शर्मा, २८, ४५
ईसामुहम्मद, १०६
एच० विखेम स्टीड, १
एनीबेसेण्ट, ४८
एस० के० वर्मन, २०
एस० नटराजन, ६२
कंटक, ९५
कन्हैयालाल, २६
कबीर, १७, १०६
कन्नोमल, लाला, ९६
कमलापति त्रिपाठी, १, २, ३४
कमलाशंकर सिंह, ४०
कार्तिकप्रसाद खत्री, १८, २५
कालिदास, २५
कालिकाप्रसाद श्रीवास्तव, १२६
कालीप्रसाद खत्री, ३०
कालूराम गंगराडे, २९
किशोरीलाल गोस्वामी, ८७
कुलयशस्वी शास्त्री, २३
कृपाराम, २४
कृष्णचन्द्र बनर्जी, २४
कृष्णबिहारी मिश्र, ३०, ३७
केदारनाथ, २०
केशवचन्द्र सेन, १६
केशवराम भट्ट, १८
खुशहालचंद खुरसन्द, ३०
गंगाप्रसाद पाण्डेय, ३४, ५०
गणेशशंकर विद्यार्थी, २८
गदाधर सिंह, १८
गरगजसिंह वर्मा, ६८, ७०, ७२
गाँधीजी, ७१
गिरजादत्त शुक्ल 'गिरीश', ३१
गिरजाप्रसाद सिंह, १८

गिरधरदास, १७
गुरुनानक, ९६
गुरुबख्श सिंह, २३
'गुलाब' ९४, ९५
गोकुलचंद शर्मा, ९४
गोपालचंद राय, १८
गोपालशरण सिंह, ९४, ९५
गोविंद, ७७
गोविंदनारायण मिश्र, २२
गौरीदत्त शर्मा, २१
गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, २५, ८७
घनानंद, १८
चंदबरदाई, १७
चन्द्रदत्त शास्त्री, ९६
चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' २५, २८
चन्द्रमौलि सुकुल, ९६
चिंतामणिराव फड़के, १८
छोटूलाल मिश्र, १७
जगतनारायण, २४
जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' ९५
जगन्नाथदास 'रत्नाकर' २५, ९२, ९३ ९४, ९५
जगन्नाथप्रसाद खत्री 'मिलिंद' ९४
जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, ८०
जगन्नाथप्रसाद वैद्य, २१
जगन्नाथप्रसाद शर्मा, २१
जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, २५
जयंतीप्रसाद शर्मा, २२
जयचन्द, ७७
जयशंकरप्रसाद, ९४, १२०, १२१, १२२
जवाहरलाल नेहरू १३, ८०, ७६
ज्वालादत्तप्रसाद गोस्वामी, २१
ज्वालादत्त शर्मा, २९
जानकीवल्लभ शास्त्री, ५१
जान हीवेट, १९
जायसी, १७
जी० पी० श्रीवास्तव, ९६
झाबरमल्ल शर्मा, ७९
तारामोहन मैत्र, १७
तुलसीदास, ५९, ६०, ९२, १२६
तोताराम वर्मा, १८
दयानंद, ४७
दिनकर, ५१
दीनदयाल गिरि, १७
दुर्गाप्रसाद, २३
दुर्गाप्रसाद मिश्र, २०, २१
दुर्गाशंकर नागर, ३०
दुलारेलाल भार्गव, २९, ३२, ९०, ९१, ९३
देव, १७
देवकीनंदन खत्री, २४, २६, २८
देवकीनंदन तिवारी, २१
देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर', ९५
देवीप्रसाद 'पूर्ण', २५
देवीसहाय, २२
द्वारकाप्रसाद मिश्र, ३२
धीरेन्द वर्मा, ३२
नरदेव शास्त्री, २८
नरोत्तम व्यास, ३१
नवजादिकलाल श्रीवास्तव,३२, ३५, ४४, ६३, ६७, ७२

नवीनचन्द राय, १८, १९
नाथूराम शंकर शर्मा, ८६, ८८
नारायणानंद सरस्वती, ८१
नित्यगोपाल मल्लिक, २०
निहालचन्द्र बेरी, २९
पद्मसिंह शर्मा, २८, ४५
परशुराम चतुर्वेदी, ९५
प्यारेलाल, २०
प्रतापनरायण मिश्र, २१, २२, ९३
प्रभुदयाल, २४
प्रेमचन्द, २९, ३२
बंकिमचन्द चटर्जी, १६
बखतावर सिह, १९
बदरीनाथ भट्ट, ८८
बदरीनाथ चौधरी 'प्रेमघन', २१, २४ ९४,
बनवारी, २४
बनवारीलाल मिश्र, २३
बनारसीदास चतुर्वेदी, ३२, ७९
बरुआजी, ३६, ४३, ४४, ४५, १२५ १२६
बलदेवप्रसाद मिश्र, २६
बलभद्रप्रसाद, २३
ब्रजभूषणलाल गुप्त, २६
ब्रह्मानंद, २०
बालकृष्ण भट्ट, २०, ३९, ९३, ९४
बालगोविन्द, २३
बालमुकुंद गुप्त, २२
बालमुकुंद, शर्मा, २८
बालेश्वरप्रसाद, १९
बिहारी, १७, ९१
बिहारी सिंह, २२
भगवानदास, २९
भवानीशंकर चौधरी, ९६
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, १७, १८. १९, २०, २१, ९३
भीमसेन शर्मा, २३
मदनमोहन मालवीय, २२, ७६, ७८
मनोहरदास खन्ना, २०
मन्ना ठाकुर, १५
महादेव, ४७
महादेवप्रसाद सेठ, ३५, ३६, ३७, ३९, ६३, ७२, ७४, ८२
महादेवी, २३
महाराज गायकवाड़, ७९
महाराज बहादुर पेरिस, ७९
महावीरप्रसाद द्विवेदी, ४५, ६२, ८७
माखनलाल चतुर्वेदी, २९, ७१
माधवप्रसाद मिश्र, २८
माधवानंद, ३०, ३८, ४३,४४,४६,५५
मीरा, १८
मुकुंदराम शास्त्री, १९,
मुनेश्वर मिश्र, २४
मुन्नालाल, २१
मैथिलीशरण गुप्त, ८४, ९४
मोतीलाल, १२६
मोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी' ९४, ९५
यशोदानंदन अखौरी, ३१
युगुलकिशोर सुकुल, १४, १५, १७
रघुनाथ थत्ते, १६
रमण, ५३

रमाकान्त त्रिपाठी, ३१
रवीन्द्र बाबू, ७८, १२३, १२४, १२५
रा० र० रवाडिलकर, १, ३
राजा रामपाल सिंह, १९, २२
राजाराममोहन राय, १६, ४८, ५१
राजा लक्ष्मण सिंह, १७
राजेन्द्रप्रसाद, २९
राधाकृष्ण चतुर्वेदी, २०
राधाकृष्णदास, २५
राधाचरण गोस्वामी, १८, २१
रामकिशोर शर्मा, ९४
रामकृष्ण, ४६, ४८, ५२, ५८, ६०, १०६
रामगोविन्द त्रिवेदी, ३१
रामचन्द वर्मा, ३१
रामचन्द्र वर्मा, २५
रामचन्द्र शुक्ल, १७, २५
रामचरित उपाध्याय, ७१
रामजीवन शर्मा, ३२
रामदहिन सिंह, २२
रामदास वर्मा, २०
रामदास वर्म्मन, २५
रामदीन वर्मा, २२
रामनरेश त्रिपाठी, ९५
रामप्रसाद निरंजनी, १५
रामरतन भटनागर, ६२
रामलाल गर्ग, ३९, १२०
रामलोचन शर्मा, ९४
रामविलास शर्मा, ५२
रामवृक्ष बेनीपुरी, ३१
रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर', ३१
रामानुजाचार्य, १०६
रामावतार 'साहित्याचार्य', ९६
रायकृष्णदास, २५
रुद्रदत्त शर्मा, २०, २५
रूपनारायण पाण्डेय, २९, ३०, ७१ ९०, ९३, ९५, १३७
रोलेंड ईबुल्स ले, १३
लक्ष्मणप्रसाद ब्रह्मचारी, २३
लक्ष्मीशंकर मिश्र, १९
लज्जाराम मेहता, २५
लल्लूलाल, १५
लालबहादुर, २२
लाला भगवानदीन, २८, ८०
लाला सीताराम, २३
लुई बैरान, १६
लुईस बैरन, ३
वंशीलाल, २२
वृन्दावनलाल वर्मा, २९
विनोदशंकर व्यास, ९६
विवेकानंद, ४३, ४४, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५ ६०, ७८, ८०, ८६
विश्वनाथलाल, ३०
विष्णुनारायण भार्गव, २९
वीरेश्वरानंद, ४६
वेणीप्रसाद, २५
शंकर आचार्य, १०६
शरत्चन्द्र, १३७
शशिभूषण, २२
शान्तिप्रिय द्विवेदी, ९२
शालग्राम शास्त्री, ९५

शिवदत्त मिश्र, २३
शिवनारायण, १९
शिवपूजन सहाय, २९, ३०, ३५, ३८
४३, ४४, ४६, ४७, ४८, ५४, ६३,
६४, ६७, ६८, ६९, ७१, ७२, १२१
शिवप्रसाद गुप्त, ६२
शिवशेखर द्विवेदी, १२०
शिवाजी, ७७
शीतलाप्रसाद उपाध्याय, २२
श्यामसुन्दर खत्री, ६८, ६९
श्यामसुन्दर दास, २५, ४५, ७९
श्रीकर, ९५
श्रीधर पाठक, १९, ८५, ८७, ९४
श्रीनिवास दास, १८
श्रीरतनशुक्ल, ९४
श्रीरमण, ५३
सकलनारायण शर्मा, २६
सच्चिदानंद सिंह, २०
सच्चिदानंद स्वामी, ८०
सज्जनसिंह, २०
सतीश गिरि, ८०
सत्यकेतु विद्यालंकार, ९५
सत्यदेव विद्यालंकार, ३१
सत्येन्द्रनाथ मजूमदार, ५३
सदल मिश्र, १५
सदानंद मिश्र, २०
सदानंद सन्याल, १८
सदासुख, १८
सदासुखलाल, १५, १७, २०
'सनेही' ३२, ९५, ९४
सर जार्ज ग्रियर्सन, ९६
सियारामशरण गुप्त, ९४, ९५
सी० आर० दासीदल, ७९
सुखसम्पत्तिराय भंडारी, ३१
सुधाकर द्विवेदी, २५
सुधाकर शर्मा, ३०
सुमित्रानंदन पंत, ८५, ९४
सुमेरसिंह, १८
सूर, १८
सूर्यप्रसाद दीक्षित, १२७
सोहनलाल द्विवेदी, ९५
स्वामी शिवानंद, ८०
स्वामी सच्चिदानंद, ८०
हंसदास शास्त्री, ३०
हजारी, ५२
हजारीलाल, २६
हनुमानप्रसाद, २०, २४
हनुमानप्रसाद पोद्दार, ३१
हरिकृष्ण जौहर, २५
हरिनारायण, ३०
हेमचन्द्र जोशी, ९६
हेरम्ब मिश्र, २९